हिंदी-कोविद-रत्नमाला

अर्थात्

हिंदी के चालीस विद्वानों और सहायकों के
सचित्र जीवनचरितों का संग्रह ।

पहला भाग ।

श्यामसुन्दर दास बी० ए० संकलित ।

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१४

मूल्य १॥)

समर्पण

प्यारे मित्र !

इधर यह ग्रथ समाप्त हुआ, उधर तुम्हारा बिछोह हुआ, इस अवस्था मे हम दोनो ने मिल कर जो बहुत वर्षो तक कई उद्योगो मे एक दूसरे का साथ दिया उसका स्मरण चिरस्थायी करने का इससे बढ कर और क्या उपाय है कि यह ग्र थ मैं तुम्हारे अर्पण करूँ। एक मित्र की यह स्नेहमयी भेट है। इसे सादर स्वीकार करना और इस नाते दूर होने पर मैत्री के पाश को ढीला न होने देना। तुम्हारा हमारा स्नेह सदा एक सा बना रहेगा, यह तो निश्चय ही है पर आशा है कि यह भेट उसे और भी दृढ करने मे सहायक होगी।

तुम्हारा स्नेही,

श्यामसुन्दर दास।

निवेदन

हिंदी भाषा के प्रेमियो को इससे बढ़कर सतोष और आनद की बात और क्या हो सकती है कि इसके पढनेवालो की सख्या दिनों दिन बढती जाती है और इसमे नित्य नए और सुंदर ग्र थ प्रकाशित होते जाते हैं। जिस गद्य मे आज हम लिखते पढते हैं उसकी उत्पत्ति लल्लूजीलाल ने १६ वी शताब्दी के प्रारभ मे कलकत्ते मे की। लल्लूजीलाल आगरे के रहनेवाले थे और पीछे से फोर्टविलियम कालेज मे नौकर हो गए थे। यहाॅ पर उन्होने अँगरेजी अफ़सरो के पढने के लिये उपयुक्त ग्र थों का अभाव देख कर पहिले पहिल प्रेमसागर लिखा, फिर उनकी देखादेखी और लोगो ने भी ग्र थ लिखे, पर वास्तव मे आधुनिक गद्य ग्र थ लिखने की चाल आगे चल कर १६ वी शताब्दी के मध्य मे निकली। इस गद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नही है कि पहिले गद्य था ही नही, किसी न किसी रूप मे था, नही तो क्या लोग पद्य मे बात चीत करते थे? गद्य बोलचाल मे अवश्य था पर भिन्न भिन्न प्रातो और स्थानो मे भिन्न भिन्न रूप मे था जिन्हे हम आज कल "बोलियो" का नाम देते हैं, जैसे आगरे के निकट ब्रज-भाषा बोली जाती है। गद्य की उत्पत्ति करने से तात्पर्य यह है कि ग्र थ लिखने की एक संगठित रीति की नीव डालना। कुछ लल्लूजीलाल ने यह सोच कर तो प्रेमसागर लिखा ही न था कि जिस भाषा की वे नीव डाल

रहे हैं वही आगे चल कर १०० वर्ष के भीतर ही एक साधारण भाषा हो जायगी और उसके सैकड़ों लेखक होगे और उसमे हजारों ग्रंथ लिखे जायँगे। ऐसे बड़े बडे काम योही साधारणत: हो जाते हैं। कभी कभी तो जो काम खिलवाड मे किए जाते हैं वे समय पाकर देश मे भारी से भारी उलट फेर करने मे समर्थ होते है। यही अवस्था लल्लूजीलाल के उद्योग की भी हुई। एक साधारण ग्रंथ लिख कर उन्होने वह काम किया कि जिसका परिणाम बडा प्रभावोत्पादक हुआ और जिसके कारण आज दिन वे हिंदी-गद्य के जन्मदाता की उपाधि से अलंकृत हैं। इनके पीछे बहुत वर्षों तक हिंदी-साहित्य का मैदान खाली रहा, कोई भी ऐसा प्रदीप प्रज्वलित न हुआ जो अपनी प्रकाश-किरणो से अविद्या के अंधकार को दूर कर उस मैदान को सुशोभित करता। इसके कोई तीस चालीस वर्ष पीछे राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह और भारतेंदु हरिश्चंद्ररूपी चमकते हुए नक्षत्रों का साहित्य-मंडल मे उदय हुआ। यद्यपि इनमे सब के पहिले राजा शिवप्रसाद का उदय हुआ, पर ध्रुव स्थान पर स्थिर होने का गौरव भारतेंदु हरिश्चंद्रजी को प्राप्त हुआ। इन्होने हिंदी-भाषा मे उस संजीवनी शक्ति का संचार किया कि जिससे वह दिनो दिन बढती और उन्नति करती गई और आज दिन उसका नभ-मंडल अनेक नक्षत्रो से परिपूर्ण हो रहा है।

इनके समकालीन अनेक विद्वानों ने अपने अपने सामर्थ्यानुसार भाषा-भंडार की पूर्त्ति का उद्योग किया और वे उसकी उन्नति मे सहायक हुए। ऐसे समय मे जब कि हिंदी की चर्चा दिनों दिन बढती जा रही है और उसके लिखने और पढनेवालों की संख्या वृद्धि पर है तथा उसे लोग राष्ट्र-भाषा के पद पर सुशोभित करने

के लिये उद्योगी हो रहे हैं, यह आवश्यक जान पडता है कि उसके कुछ मुख्य मुख्य सेवियो के चित्र और चरित हिंदी-प्रेमियो के अर्पण किये जायँ। आज एक वर्ष के लगभग हुआ कि यह भाव मेरे हृदय मे उत्पन्न हुआ। मैंने इडियन प्रेस के स्वामी से प्रस्ताव किया कि वे एक ऐसा ग्रथ छपाने का उद्योग करे। उन्होने कृपा कर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया, पर साथ ही शर्त यह लगा दी कि ग्रथ का संपादन मैं ही करूँ। मैंने भी इस सिद्धांत के अनुसार कि "जो बोले सो घी को जाय" इस कार्य्य का भार अपने ऊपर लिया। यह स्थिर हो जाने पर एक इस ग्रथ के पहिले भाग मे किन किन महानुभावो के चरित्र और चित्र रहेगे मै इसकी सामग्री एकत्रित करने मे तत्पर हुआ। इस कार्य्य मे अनेक महानुभावो ने तो पत्र पाते ही आवश्यक सहायता से मुझे अनुगृहीत किया पर अधिकाश लोगो को कई बेर पत्र लिख कर तकाजा करना पडा। इस स्थान पर उन कठि-नाइयों के वर्णन करने की आवश्यकता नही है कि जो मुझे अधिकाश चित्रो और चरित्रो के संग्रह करने मे उठानी पडी। पाठक, इसी से इसका बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं कि अतिम जीवन-चरित मुझे १७ अक्टूबर १९०८ को और अंतिम फ़ोटो २८ दिसंबर १९०८ को प्राप्त हुआ। अस्तु, यद्यपि इस छोटी सी पुस्तक के लिखने मे इतना समय लग गया पर मुझे सतोष और आनद है कि यह अंत मे तैयार हो गई और अब शीघ्र ही हिंदी-प्रेमियो के हाथो मे पहुँच कर यदि और कुछ नही तो कम से कम लेखकों और पाठको मे परस्पर सहानुभूति और प्रीति उत्पन्न करने मे सहायक होगी। यदि इससे केवल इसी उद्देश्य की सिद्धि हो गई तो मैं अपने उद्योग को सफल समझूँगा।

इस रत्नमाला मे चालीस जीवन-चरित्रो का संग्रह है जिनमे

२०* तो ऐसे महानुभावो के हैं जो परलोकगामी हो गए हैं और २०* अभी वर्तमान हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि और इस योग्य हैं ही नही जो इसमे स्थान पाते। इस रत्नमाला का यह पहिला भाग है और दूसरे जब केवल चालीस जीवनचरित्रों के संग्रह करने मे इतना समय लग गया तो यदि इनकी सख्या बढा दी जाती तो न जाने कितना समय लगता। यदि इस ग्रथ का आदर हुआ और प्रकाशक का व्ययमात्र भी निकल आया तो इस ग्रथ के दूसरे भाग के प्रकाशित करने का उद्योग किया जायगा। यदि किसी ऐसे महाशय का चित्र और चरित इस भाग मे छूट गया हो जिसका रखना आवश्यक और उचित था तो वे क्षमा करेंगे और उसकी सूचना देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे जिसमे मै दूसरे भाग मे उस त्रुटि को दूर कर सकूँ। प्रत्येक जीवनचरित को मैंने उसके नायक की जन्म तिथि के क्रम से अकित किया है जिसमे किसी को इस बात के कहने और सोचने का अवसर न प्राप्त हो कि मैंने उनकी योग्यता के अनुसार इस ग्र थ मे उन्हे स्थान नही दिया। मेरी दृष्टि मे तो सब समान सम्मान के पात्र हैं और मैं किसी को आगे बढाना अथवा पीछे हटाना अपनी सामर्थ्य के बाहर समझता हूँ। इसलिये मुझे विश्वास है कि इस ग्र थ के पाठकगण इस ग्रंथ की त्रुटियो की ओर ध्यान न देकर इसको सादर स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

इस ग्र थ के लिखने मे मुझे अनेक मित्रो से सहायता मिली जिन सबका मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। पंडित श्रीधर पाठक का मैं विशेष अनुगृहीत हूँ कि उन्होने एक बेर इस ग्र थ को आदि से अंत तक पढ कर उचित परामर्शो से मुझे बाधित किया है।

---

* द्वितीय सस्करण के समय जीवितो की संख्या १४ और मृतो की २६ हो गई।

आशा है कि जिस उद्देश्य से यह संग्रह किया गया है उसमे सफलता प्राप्त हो और यह ग्रंथ हिंदी के प्रेमियो मे स्नेह बंधन के दृढ करने मे समर्थ हो।

१ जनवरी १९०९।

चार वर्ष के अनंतर इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण छापने की आवश्यकता हुई। इस संस्करण मे बहुत कम उलट फेर किया गया है। केवल चरितनायको की जीवन-घटना जहाँ कही अधूरी जान पडी पूरी कर दी गई है।

श्यामसुन्दर दास।

चरितनायकों की नामावली ।

[जिन नामो के आगे * यह चिह्न है वे अब जीवित नही है ।]

* (१) राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ।
* (२) महर्षि दयानद सरस्वती ।
* (३) राजा लक्ष्मणसिह ।
* (४) पडित गौरीदत्त ।
* (५) मिस्टर फ्रे डरिक पिनकाट ।
* (६) बाबू नवीनचद्र राय ।
(७) डाक्टर ए० एफ० रुडाल्फ हर्नली, सी० आई० ई० ।
(८) पडित बालकृष्ण भट्ट ।
* (९) बाबू तोताराम ।
* (१०) राजा रामपालसिंह ।
* (११) बाबू गदाधरसिह ।
* (१२) राय बहादुर पडित लक्ष्मीशकर मिश्र, एम० ए० ।
* (१३) भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र ।
* (१४) पडित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या ।
* (१५) लाला श्रीनिवासदास ।
* (१६) बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री ।
(१७) पडित भीमसेन शर्म्मा ।
* (१८) पडित केशवराम भट्ट ।
(१९) पडित बदरीनारायण चौधरी ।
* (२०) पंडित प्रतापनारायण मिश्र ।
(२१) डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० ।
* (२२) ठाकुर जगमोहनसिह ।

(२३) लाला सीताराम, बी० ए० ।
(२४) पडित राधाचरण गोस्वामी ।
❀ (२५) साहित्याचार्य पडित अम्बिकादत्त व्यास ।
❀ (२६) पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र ।
❀ (२७) बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ।
(२८) पडित श्रीधर पाठक ।
❀ (२९) महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ।
❀ (३०) बाबू देवकीनदन खत्री ।
(३१) पडित ज्वालाप्रसाद मिश्र ।
(३२) आनरेब्ल पडित मदनमोहन मालवीय, बी० ए०, एल० एल० बी० ।
(३३) पडित गौरीशकर हीराचद ओझा ।
❀ (३४) लाला बालमुकुद गुप्त ।
(३५) पडित अयोध्यासिह उपाध्याय ।
❀ (३६) बाबू राधाकृष्णदास ।
(३७) पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ।
(३८) ठाकुर गदाधरसिह ।
❀ (३९) पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र ।
(४०) पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० ।

नोट—मेरी बहुत इच्छा थी कि इस रत्नमाला के पहिले भाग मे हिंदी के अन्य दो एक प्रसिद्ध विद्वानो और सेवियों के चित्र और चरित दिए जाते, परंतु मुझे दुःख है कि बहुत कुछ उद्योग करने पर भी यह इच्छा पूरी न हो सकी ।

२७-१-०९ श्यामसुन्दर दास

हिंदी-कोविद-रत्नमाला।

पहला भाग।

(१) राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद।

सिद्ध रणथंभौरगढ में धधार नाम का एक प्रमार राजा राज्य करता था। वह जैन-धर्मावलंबी था। उसके पुत्र का नाम गोखरू था। हमारे राजा साहिब इसी गोखरू गोत्र में थे। बादशाही समय में इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी का व्यवसाय करते थे। वे नादिर-शाही में दिल्ली से भाग कर मुरशिदाबाद चले गए। नव्वाब कासिमअलीख़ाँ के अत्याचार से राजा शिवप्रसाद के पितामह राय डालचंद काशी में आ बसे।

आपका जन्म मिती माघ सुदी २ संवत् १८८० में हुआ था। पिता का नाम बाबू गोपीचंद था। इनके घर की सब स्त्रियाँ पढी लिखी थीं, इसलिए पाँच ही वर्ष के शैशव से राजा शिवप्रसाद की शिक्षा का प्रबंध हो गया। पहिले तो इन्होंने घर पर ही कुछ हिन्दी और उर्दू पढी। फिर बीबीहटिया के स्कूल में फ़ारसी का अध्ययन करने लगे। इसके पीछे संस्कृत का भी अभ्यास किया। जब कि राजा साहिब की कोई १३ या १४ वर्ष की अवस्था थी तब कलकत्ते के फ़ोर्टविलियम कालेज के प्रोफ़ेसर बाबू तारणीचरण मित्र पेंशनर का काशीनिवास के अर्थ बनारस में आना हुआ। उनके पुत्रों से और किशोर राजा शिवप्रसाद से घनिष्ठ मित्रता हो गई। और उन्हींसे

इन्होंने अँगरेजी और बँगला भाषाएँ सीखी और १९ वर्ष की अवस्था मे सस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, अँगरेजी और बँगला मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार अपनी शिक्षा समाप्त कर चुकने पर अपने मामा की सहायता से बाबू शिवप्रसाद भरतपुर दरबार मे नौकर हुए। वहाॅ जाते ही आप ने पहला कार्य यह किया कि राज्य के दीवान को, जो कि राजा को दबाए और रियासत पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए था, अँगरेज सरकार की अनुमति से ८० कायस्थो सहित जेल भिजवाया और महाराज को स्वतत्र कर दिया। इस कार्य से प्रसन्न हो कर महाराज ने इन्हे अपना वकील नियुक्त किया। इस अवस्था मे इन्होने गवर्नमेंट से लडाई के तकाजे के १८ लाख रुपए भरतपुर को माफ करवाए।

कुछ काल के पीछे ये भरतपुर की नौकरी छोड कर घर चले आए और फिर भरतपुर न गये। सन् १८४५ ई० मे राजा साहिब ने अँगरेज सरकार की सेवा स्वीकार की। उस समय सिक्खयुद्ध का आरभ था। ये अँगरेजी लश्कर के साथ सरहद पर गए और गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार वहाँ इन्होंने एक अत्यन्त साहस, वीरता और स्वामिभक्ति का यह काम किया कि अकेले शत्रुसेना मे जा कर वहाॅ की तोपे गिन आए तथा और भी भेद ले आए। अथ च, आप ही अकेले महाराजा दिलीपसिह को बबई तक पहुँचा कर जहाज पर सवार करा आए।

सिक्खो से संधि हो चुकने पर जब गवर्नर जनरल शिमले को गए तो इन्हे भी साथ लेते गए और एक पद विशेष पर नियुक्त किया। वहाँ इन्होंने बडे परिश्रम से अपना काम किया जिससे ये दिन दिन अँगरेज-कर्मचारियो के कृपापात्र होते गए। उसी कृपा के

कारण राजा शिवप्रसाद ने वह सेवा और भक्ति की कि जो उनके जाननेवाले सब पुरुषो पर विदित है। हजरत सब के बुरे बने, पर अँगरेजो का पक्ष निवाहा। इनका मतव्य था "जिसका खाना उसका गाना।"

शिमले से आ कर राजा साहिब ने कुछ दिन काशी मे कमिश्नर साहिब के मीरमु शी का काम किया, परतु विद्या-विषयक रुचि के अनुसार सरकार ने उन्हे स्कूलो का इंसपेक्टर नियत कर दिया। अपनी इंसपेक्टरी मे राजा साहिब ने मातृभाषा हिंदी का जो उपकार किया उसके लिए हिंदी बोलनेवालो को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। उस समय शिक्षा-विभाग मे मुसलमानो का प्राबल्य था और वे चाहते थे कि हिंदी का पठन पाठन ही उठा दिया जाय, केवल उर्दू फारसी रहे। अँगरेज भी इस विषय मे सहमत थे। क्योकि हिंदी मे तब तक कोई ऐसी पुस्तके न थी जो स्कूलों मे पढ़ाई जा सके। परतु राजा साहिब ने हिंदी का पक्ष प्रतिपालन किया और स्वय उसमे अनेक ग्रन्थ रच कर उक्त अभाव को दूर किया और भाषा की शिक्षा को स्थिर रक्खा। उन्होने साहित्य, व्याकरण, भूगोल, इतिहास आदि विषयो पर सब मिला कर कोई ३५ पुस्तके लिखी। आप बाबू हरिश्चद्र के विद्या-गुरु थे।

सन् १८७२ ई० मे उन्हे सी० एस० आई की उपाधि मिली और सन् १८८७ मे वशपरम्परा के लिए "राजा" की पदवी प्राप्त हुई। आपका देहात ता०२३ मई सन् १८९५ को काशी मे हुआ।

---

(२) महर्षि दयानंद सरस्वती।

स्वामी दयानद सरस्वती का जन्म सन् १८२४ ई० मे गुजरात देश के मोरवी नगर मे हुआ था। ये औदीच्य ब्राह्मण थे और इनका असली नाम मूलशंकर था। इनके पिता अंबाशंकर एक प्रतिष्ठित जमीदार थे।

स्वामीजी को सामयिक प्रथा के अनुसार बाल्यावस्था मे रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन आरभ कराया गया। एक समय जब इनकी अवस्था केवल १४ वर्ष की थी इनके पिता ने इन्हे शिवरात्रि का व्रत रखने की आज्ञा दी। रात्रि को सब लोग शिवालय मे जागरण करने गये। और सब तो सो गए परन्तु स्वामीजी को नीद न आई। दैवयोग से उसी समय एक चूहा शिवजी की पिडी पर चढ गया और चढे हुए अक्षत को खाने लगा। यह देख कर स्वामीजी के मन से मूर्तिपूजा से श्रद्धा उठ गई और वे यह कह कर घर को चले आए कि जब तक शिवजी के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लूँगा तब तक कोई व्रत या नियम न करूँगा।

जिस समय स्वामीजी की अवस्था २० वर्ष की हुई इनके चाचा का देहात हो गया। वे इन्हे बहुत चाहते थे इसलिए उनकी मृत्यु से इनके चित्त पर कड़ी चोट लगी और वैराग्य उत्पन्न हो आया। इस समय इनको जो अच्छा पंडित या जानकार पुरुष मिलता उसी से ये यह प्रश्न करते कि मनुष्य अमर किस तरह हो सकता है और उत्तर मिलता कि योगाभ्यास से। यह सुन कर स्वामीजी को योगाभ्यास की शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट इच्छा हुई।
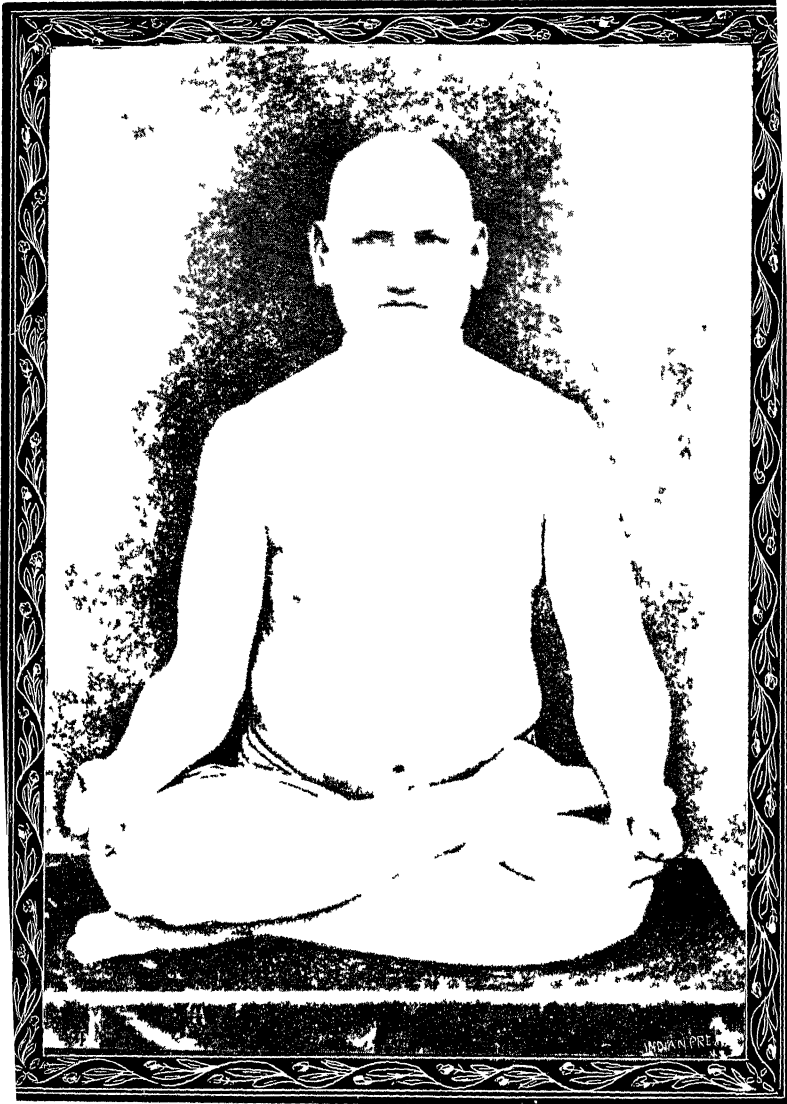
महर्षि दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी ने योगाभ्यास के ज्ञाता की खोज मे पर्य्यटन करना निश्चय किया और इसके लिये पिता की आज्ञा चाही। पर वे क्यो आज्ञा देने लगे थे ? वे तो इनके विवाह की युक्ति मे लगे थे। अस्तु, बिना आज्ञा ही स्वामी जी घर से निकल पड़े और साधुओ के सत्सग मे निरत हुए, परतु इन्हे यथार्थ मे कोई साधु न मिला, जो मिले उनसे इनका सतोष न हुआ, अत· इनकी साधुओ से भी श्रद्धा हट गई। इसी बीच मे इनके पिताजी ने इन्हे आन पकडा और चार सिपाहियो के पहरे मे घर ले चले, परतु रास्ते मे रात को उठ कर वे फिर भाग खडे हुए और उत्तर मे अलकनदा के किनारे विश्राम लिया। इस ओर इन्हे कई अच्छे अच्छे साधुओ के दर्शन हुए और उन लोगो ने इन्हे कुछ योग क्रियाएँ भी बतलाई। अलकनंदा के तट पर पहुँच कर पहिले तो इन्होने चाहा कि बरफ मे गल कर प्राण देदेवे और ससार के झझटो से पार हो जावे। पर फिर सोचा कि आत्महत्या तो महापाप है, ऐसा क्यो करें ? विद्याध्ययन करके ही इस जीवन को सफल क्यों न करें ? यह निश्चय करके स्वामी जी मथुरा आए। यहाँ स्वामी विरजानद नामक एक विलक्षण विद्वान् महापुरुष रहते थे। वे आँखों से अधे थे। अवस्था ८१ वर्ष की थी। स्वामी जी उनसे विद्याध्ययन करने लगे। इन्होने उनकी खूब मन लगा कर सेवा शुश्रूषा की और उन्होने इन्हे प्रसन्न-चित्त से शिक्षा दी। जब ये विद्या पढ चुके तो थोडी सी लौगे लेकर गुरु जी से आज्ञा मागने गये। उन्होने इनको आशीर्वाद देकर प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दी और आदेश किया कि तुम देश का उद्धार करो, लोगो को असन्मार्ग से हटा कर वेद-मत पर लाओ। 'अनाचारो' का नाश करो और वेद-विहित सदाचारो का प्रचार करके मानवसमाज का उपकार करो।'

गुरु जी की इस आज्ञा को स्वामीजी ने किस प्रकार से पालन किया, यह सब पर विदित है। इसी उद्देश्य से सन् १८७५ ई० मे इन्होने आर्य-समाज की नीव डाली और उससे भारतवर्ष का कितना उपकार हुआ है यह किसी से छिपा नही है। परतु स्वामीजी से मातृभाषा हिदी का कितना उपकार हुआ यह बहुत थोडे लोग जानते अथवा विचार करते होगे। यद्यपि स्वामी जी अपने समय तक के रचे हुए भाषा-ग्रंथो को कपोलकल्पित कह कर उनमे श्रद्धा नही करते थे तथापि उन्होने जो कुछ लिखा सब हिदी मे लिखा और ऐसी सरल हिदी मे कि जिसे सब लोग सहज ही समझ सकते है। इन्होने हिदी मे वेदो की टीका की, उपनिषदों पर टिप्पणी लिखीं, और अपने सिद्धान्तो का सग्रहसूचक "सत्यार्थप्रकाश" भी इसी भाषा मे प्रकाशित किया। आर्यसमाज के उपनियमो मे हिदी भाषा का पढना सब आर्यसमाजो के लिये आवश्यक किया। स्वामी जी के बनाए ग्रथो मे अत्यत श्रद्धा रखनेवाले और हिंदी भाषा को न जाननेवाले दूसरी भाषाओ के विद्वानो ने स्वामी जी से कई बार प्रार्थना की कि सत्यार्थ-प्रकाश आदि ग्रंथो का उर्दू और अँगरेज़ी आदि भाषाओं मे अनुवाद हो जावे तो संसार का बडा उपकार हो। स्वामी जी ने उन लोगो को सदा यही उत्तर दिया कि मैं अपने सामने अन्य भाषा मे अपने ग्रंथों का अनुवाद न होने दूँगा। ससार का इससे बडा उपकार होगा कि सब हिदी जाननेवाले बनजावें। जो लोग मेरी पुस्तको में श्रद्धा करेगे वे अवश्य हिदी पढना सीखेगे। आज कल इनके सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के प्रभाव से पंजाब मे हिंदी का वह प्रभाव है कि जिसकी कदापि आशा न थी। इसमे संदेह नही कि अब भी पंजाब मे उर्दू लिखने पढने वालों की सख्या अधिक होगी परंतु अक्षर केवल उर्दू होते हैं, भाषा मे हिदी संस्कृत के शब्द भरे रहते हैं। उर्दू के मुसल-

मान विद्वान् कहते हैं कि आर्यसमाजियों ने उर्दू का सत्यानाश कर दिया। इसके सिवाय देश भर मे जहाँ कही आर्यसमाज का नाम व निशान मौजूद है वहाँ हिंदी भाषा की चर्चा भी अवश्य है।

स्वामी जी का देहात सन् १८८३ ई० मे अजमेर मे हुआ। इनसे देश का जो उपकार हुआ है वह निस्संदेह अमूल्य है। वेद मत का प्रचार, अपनी पूर्वकीर्ति मे निष्ठा और भविष्यत् उन्नति मे उद्योग यह उन्होने भारतवासियो को सिखाया है। १९ शताब्दी मे जो महात्मा भारतवर्ष मे हुए उन सबमे स्वामी जी का आसन श्रेष्ठ है।

(३) राजा लक्ष्मणसिंह ।
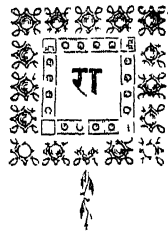
राजा लक्ष्मणसिह यदुवशी क्षत्रिय थे । जन्मभूमि आगरा, जन्म तिथि ६ अक्तूबर सन् १८२६ ई० ।

वैसे तो घरवालो ने इनकी शिक्षा पर उसी समय से ध्यान दिया जब से कि ये तोतली जिह्वा से बोलने लगे थे परतु पाँच वर्ष की अवस्था होने पर इन्हे विधिवत् विद्यारम्भ कराया गया । जब इन्हे नागरी अक्षरो के लिखने का पूरा अभ्यास हो गया तो सस्कृत और फारसी की शिक्षा दी जाने लगी । ये तीव्रबुद्धि तो थे ही, बारह वर्ष की अवस्था तक इन्होने फारसी और सस्कृत दोनो भाषाओ मे वय-अनुसार अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । बारह वर्ष की अवस्था मे यज्ञोपवीत हो जाने पर अँगरेजी भाषा की शिक्षा पाने के लिये इन्हे आगरा कालेज मे बैठाया गया । उस समय अब की तरह बी० ए०, एम० ए० आदि की परीक्षाए न होती थी, केवल सीनियर, जूनियर परीक्षाएं होती थीं । अस्तु, हमारे चरितनायक ने सीनियर परीक्षा पास की । कालेज मे अँगरेजी के साथ इनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी और घर पर ये हिंदी, अरबी और फारसी का अभ्यास किया करते थे । कालेज छोड़ने पर इन्होने बँगला भी सीख ली । इस तरह से २४ वर्ष की अवस्था मे इन्होने कई एक भाषाओ मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली ।

राजा लक्ष्मणसिंह कालेज से निकल कर पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट के दफ़्तर मे सौ रुपए मासिक वेतन पर अनुवाद करने के काम पर

राजा लक्ष्मणसिंह ।

नौकर हुए। तीन वर्ष के बाद इनका वेतन १५०) मासिक हुआ और ये सदरबोर्ड के दफ़्र मे नियत हुए। इसके दो वर्ष पीछे सन् १८५५ ई० मे इन्हे इटावे की तहसीलदारी मिली। उन दिनो इटावे मे ह्यूम साहब कलेकृर थे। वे इनके गुणो पर मोहित होकर इनसे अत्यत प्रसन्न थे। अस्तु, उनकी सहायता से राजा साहिब ने इटावे मे ह्यूम हाई स्कूल स्थापित किया जो कि अब तक विद्यमान है और जिससे प्रति वर्ष अच्छे अच्छे योग्य विद्यार्थी पास होते हैं। इनकी कार्य-प्रणाली से अत्यत प्रसन्न होकर ह्यूम साहिब ने गवर्नमेट को इनकी बडी तारीफ लिखी जिससे गवर्नमेट ने इन्हे डिप्टी कलेकृर बना दिया और बाँदे को बदली कर दी। यह सन् १८५६-५७ की बात है।

राजा साहिब बाँदे से छुट्टी लेकर अपने घर आगरे को जा रहे थे कि उसी समय सिपाहियो का बलवा हो गया। जब आप इटावे के पास पहुँचे तो सुना कि यहाँ पर भी बडा उपद्रव मचा हुआ है। बस ये फौरन् ह्यूम साहिब के पास पहुँचे और उनके कहने के अनुसार बहुत से अँगरेजबालको और मेमो को सकुशल आगरे के किले मे पहुँचा दिया। घर पर पहुँच कर इन्होने राजपूतों का एक झुंड बटोरा और उन्हे लेकर ये ह्यूम साहिब की रक्षा को इटावे को जाने वाले थे कि तब तक वे स्वय ही घर पर आ गए। इन्होने उनको अपनी ही रक्षा मे रक्खा और जब दिल्ली को अधीन करके सरकारी फ़ौज ने इटावे पर धावा किया तो इन्होने स्वय उस फौज का साथ दिया और वे लडाइयो मे सम्मिलित रहे।

इस राजभक्ति के लिये इन्हे सरकार ने रुरका का इलाका माफ़ी देना चाहा परन्तु इन्होने नम्रतापूर्वक यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि हमने जो कुछ किया जातीय-धर्म के अनुसार किया। इसमे पुरस्कार की क्या आवश्यकता? तब इन्हे पहले दरजे की डिप्टी

कलेक्टरी दी गई और ८००) रु० मासिक वेतन पर बुलंदशहर को इनकी बदली हुई। यहाँ इन्होने २० वर्ष काम किया और सन् १८८६ ई० मे पेंशन लेकर फिर वे अपनी जन्मभूमि आगरे मे रहने लगे। सन् १८७० ई० के प्रथम दिल्लीदरबार मे इन्हे गवर्नमेंट ने राजा की पदवी प्रदान की।

यद्यपि डिप्टी कलेक्टरी के कामो से इन्हे अवकाश बहुत कम मिलता था तो भी हिंदी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता उसे ये उसी की सेवा मे लगाते। इन्होने गवर्नमेंट की बहुतेरी पुस्तको का अँगरेजी और फारसी से हिंदी मे उल्था किया, जिनमे से एक ताजीरात हिंद का अनुवाद "दंडसंग्रह" है। इन्होंने बुलंद-शहर का एक इतिहास भी लिखा था जो कि हिंदी, उर्दू, अँगरेजी तीनो भाषाओ मे छपा है। हिंदी-जगत् मे आपका नाम अमर करने वाले शकुंतला, मेघदूत और रघुवंश इन तीनो पुस्तकों के भाषानुवाद हैं। इन पुस्तको के अनुवाद मे इन्होने जो अपने पांडित्य का चमत्कार दिखलाया है वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष तथा योरोप के विद्वानो ने भी आपको हिंदी का अच्छा कवि माना है। इनकी लेखनी मे यह ख़ूबी है कि पद्य की कौन कहे गद्य मे भी उर्दू फ़ारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है, फिर भी एक एक पद सरस, सुपाठ्य और सरलता से भरा हुआ है। इनका देहांत ६९ वर्ष की अवस्था मे ता० १४ जुलाई सन् १८९६ ई० को हुआ।

पंडित गौरीदत्त।

(४) पंडित गौरीदत्त ।

पंडित गौरीदत्त भारद्वाज गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण थे। जन्मभूमि लुधियाना, जन्मतिथि मि० पौष सुदी २ सवत् १८९३ ।

पडित गौरीदत्त के दादा नाथू मिश्र एक प्रसिद्ध तात्रिक पडित थे, पर इनके पिता फारसी मे भी अच्छी योग्यता रखते थे। वे सरकार की तरफ से सतलज के पुल पर सरहदी दारोगा थे। पंडित गौरीदत्त की कोई पॉच वर्ष की उमर थी कि इनके घर एक सन्यासी आया और उसने इनके पिता को ऐसा ज्ञान दिया कि वे तुरत ससार का सब मायामोह छोड घर से निकल पडे। तब इनकी माता अपने दोनों बच्चो सहित मेरठ को चली आई।

पडित गौरीदत्त को प्रथम तो प्राचीन प्रथा के अनुसार केवल साधारण पडिताई की शिक्षा दी गई थी परतु वय प्राप्त होने पर इन्होने फारसी और अँगरेजी का स्वय अभ्यास किया। तदनंतर रुडकी कालिज मे भरती होकर बीजगणित, रेखागणित, सर्वेइग, ड्राइग और शिल्प आदि व्यवसाय सीखे। साथ ही कुछ वैद्यक और हकीमी का भी अभ्यास किया।

सन् १८५५ ई० मे पडित गौरीदत्त १८ वर्ष की अवस्था मे एक मदरसे मे नौकर हो गए। परतु इसके दूसरे वर्ष मेरठ मे बलवे का जोर होने से दिल्ली से आई हुई सरकारी सेना मे अपने मौसा के सहकारी गुमाश्ता होकर लखनऊ तक गए। परतु यह मृत्यु-मुख

व्यवसाय इनकी रुचि के अनुकूल न था इसलिये एक ही वर्ष मे इन्होने वह काम छोड दिया और मेरठ को लौट गए। बलवा भी शात हो गया था। अस्तु इन्होने फिर एक मदरसे मे नौकरी कर ली और आनद से समय बिताने लगे। अथ च अपने निज के कई देन लेन के व्यवसाय भी इन्होने चलाए और चालीस वर्ष की अवस्था तक इतना धन पैदा कर लिया कि बुढापे मे अपने आप बैठे खा सके, किसी के आश्रित न होना पडे।

चालीस से पैतालीस वर्ष की अवस्था के अतर्गत पडित गौरी-दत्त के जीवन मे बडा हेर फेर हो गया। सहसा इनके जी मे यह बात समा गई कि स्वार्थसंचय तो बहुत किया, अब कुछ परमार्थ या परलोक-हित कार्य करना चाहिए। यह विचार कर इन्होने स्कूल की सेवावृत्ति छोड दी और अपनी मातृभाषा नागरी की सेवा करने मे दत्तचित्त हुए। पहिले तो अपनी सब जायदाद देवनागरी प्रचार के लिये समर्पण कर उसकी रजिस्टरी करा दी, फिर देशाटन करना आरभ किया और गाँव गाँव, नगर नगर देवनागरीप्रचार के लाभ समझाते हुए व्याख्यान देते फिरने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि कई जगह देवनागरी के स्कूल तक खुल गए और बहुत से लोगों का चित्त इस ओर आकर्षित हो गया।

पंडित गौरीदत्त ने नागरी-प्रचार के लिये शेष जीवन मे तन मन से चेष्टा की। इन्होने नागरीप्रचार के लिये कई एक ऐसे खेल या गोरखधधे बनाए जिन्हे देखते ही आदमी की तबीयत उनमे उलझे और नागरी अक्षरों का उसे ज्ञान हो जाय। इन्होने स्त्री-शिक्षा पर तीन किताबें लिखी जिन्हे गवर्नमेट ने भी पसंद किया और इन्हे इनाम भी दिया। इनका बनाया हिदीभाषा का एक कोष भी है जो अपने ढग का अच्छा है। इन्होने इस विषय मे जो सब से बडा

काम किया वह मेरठ का नागरी स्कूल है। यह स्कूल अब भी विद्यमान है और उसमे मिडिल तक नागरी की शिक्षा दी जाती है। इसमे ८५) रु० मासिक सहायता गवर्नमेंट भी देती है। नागरी-प्रचार के सबध मे चदे से जो रुपया आता था उसे ये नगर के रईसो के पास जमा रखते थे और वही से उसका जमा खर्च होता था। इन्होने सन् १८९४ मे स्वय छोटे लाट के पास दफ्तरो मे नागरी-प्रचार के लिये एक मेमोरियल भेजा था और जब काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने इस विषय मे प्रयत्न किया तब भी इन्होने समुचित सहायता दी थी।

६५ वर्ष से भी ऊपर अवस्था हो जाने पर पडित गौरीदत्त चुप चाप हो कर नही बैठे। जहाँ कही मेला होता अपना नागरीप्रचार का झडा ले कर जाते और नागरी भाषा की उन्नति पर व्याख्यान देते। प्रत्येक सभा सोसायटी मे जा कर नागरीप्रचार का गीत गाते। इनसे लोग राम राम, प्रणाम के बदले "जय नागरी की" कहा करते थे। इसी प्रकार लडके भी हल्ला करते हुए इनके पीछे चलते थे। इनका देहात ता० ८ फरवरी सन् १९०६ को हुआ। इनकी समाधि मेरठ के सूर्यकुड पर है और उस पर मोटे अक्षरो मे "गुप्त संन्यासी नागरीप्रचारानद" अंकित है।

---

(५) मिस्टर .फ्रेडरिक पिनकाट ।

यों तो कई योरोपनिवासी विद्वान् ऐसे हो गए हैं जिन्होने हिंदीसाहित्य मे विज्ञता प्राप्त की है और अपनी भाषा द्वारा उसकी सेवा भी की है परन्तु इनमे पिनकाट साहिब ही ऐसे थे जिन्हे हिंदी लिखने का व्यसन था और जो अपने भारतवासी मित्रो से प्राय हिंदी ही मे पत्र-व्यवहार करते थे। भारतवर्ष की ओर इनका बड़ा स्नेह था और इनकी भलाई का अवसर पाने पर वे कभी उससे नही चूकते थे। भारतवर्ष से हजारों कोस दूर रह कर इससे स्नेह करना इनके महत्त्व को सिद्ध करता है।

इनका जन्म सन् १८३६ ई० मे इँगलैंड मे हुआ था। इनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी अतएव उनके द्वारा इन्हे यथोचित शिक्षा नहीं प्राप्त हुई। प्रारम्भ मे इन्होने एक स्कूल मे पढा, पर धनाभाव के कारण पढना शीघ्र ही छोडना पड़ा और सेवा-वृत्ति ग्रहण करनी पडी। पहिले पहिल इन्होने एक छापेखाने मे कंपाज़िटरी का काम प्रारभ किया और कुछ काल के अनन्तर प्रूफ-रीडर नियत हुए। यही पर इन्हे संस्कृत पढने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस भाषा का अध्ययन ये अँगरेजी ही के द्वारा कर सकते थे। परंतु उपयोगी पुस्तकों का मूल्य बहुत था, इसलिये वे उन्हे सहज मे न मिल सकीं। बडी चेष्टा के बाद एक मित्र की सहायता से कुछ पुस्तके प्राप्त हो गईं और इन्होने सस्कृत पढना आरम्भ कर दिया और कुछ वर्षों के परिश्रम के अनन्तर उसमे अच्छी योग्यता प्राप्त करली। यों ही विद्या मे उन्नति
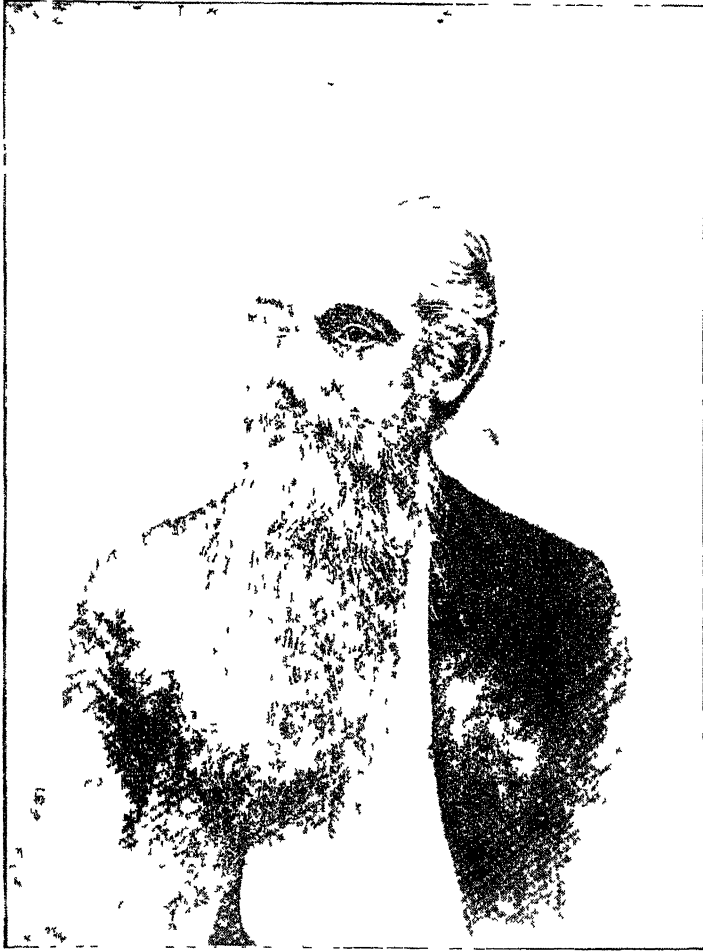
मिस्टर फ्रेडरिक पिनकाट।।

के साथ ही साथ इनकी सासारिक अवस्था मे भी उन्नति हुई। कुछ काल के पीछे ये एलन कम्पनी के छापेखाने के मैनेजर नियत हुए। इस पद पर रह कर इन्होने कई एक अच्छी अच्छी पुस्तके लिखी। देशी भाषाओं मे पहिले पहिल इन्होने उर्दू का अध्ययन किया और उसके अनन्तर गुजराती, बँगला, तामिल, तैलगी, मलायलम, और कनारी भाषाए सीखी और सब के अंत मे हिंदी की ओर इनका अनुराग हुआ। बस फिर क्या था, हिंदी पढने ही की देर थी कि और सब भाषाओ पर का अनुराग एक इसी पर आकृष्ट हो गया। हिंदी पर आप की प्रीति इतनी बढी कि आप अनेक हिन्दीसमाचार पत्रो के पाठक बन गए और कभी कभी लेख भी उनमे देने लगे। होते होते इनकी सुकीर्ति चारों ओर फैलने लगी। इनकी बनाई पुस्तके सिविल सर्विस परीक्षा मे नियत हुई और हिन्दी के विषय मे इनकी बाते प्रामाणिक मानी जाने लगी। अच्छी अच्छी हिंदी पुस्तकों पर ये अपनी सम्मति लिख कर विलायती पत्रो मे छपवाते, इस प्रकार भारतवर्ष की हिंदी रसिक मडली के हृदय मे भी इन्होने स्थान पा लिया। मृत्यु के कुछ वर्ष पहिले गिलवर्ट और रिविटन कम्पनी के पूर्वी विभाग के ये मन्त्री नियत हुए और अत काल तक वही काम करते रहे। सन् १८९५ ई० मे ये भारतवर्ष मे रीहा घास की खेती की उन्नति कराने के उद्देश्य से आए। पर होनी बडी प्रबल होती है। जिस भारतवर्ष से आप को इतना प्रेम था, वही उसकी गोद मे आपकी आत्मा ने शाति प्राप्त की। इसी रीहा घास की खेती के उद्योग मे वे लखनऊ आए और वही सात फ़रवरी सन् १८९६ को इन्होने इसी देश की भूमि मे अपने प्राण छोडे।

इन्होने अपना ब्याह २३ वर्ष की अवस्था मे किया। इनकी स्त्री का स्वर्गवास सन् १८८८ ई० मे हुआ, संतति इनको केवल एक कन्या

हुई। इनके बनाए या सपादित ७ ग्रन्थ हैं। कई वर्षों तक इन्होंने एक व्यापारसम्बन्धी अखबार अँगरेजी उर्दू और हिंदी में निकाला था। ये स्वभाव के बडे सीधे और चरित्र के बड़े पक्के थे।

बाबू नवीनचंद्र राय।

(६) बाबू नवीनचंद्र राय ।

सन ईसवी की उन्नीसवी शताब्दी के आरभ मे अँगरेज़ सरकार ने कुछ बगाली बाबुओ को अपने काम से पजाब को भेजा था। उनमे से राढीय श्रेणी के ब्राह्मण एक राममोहन राय थे जो कि बर्दवान जिले के रहने वाले थे।

बाबू नवीनचद्र राय उक्त राममोहन राय के पुत्र थे। इनका जन्म ता० २० फरवरी सन् १८३८ ई० मे हुआ था। जब कि इनकी अवस्था केवल डेढ वर्ष की थी, इनके पिता का स्वर्गवास हो गया और इनके भरणपोषण का भार केवल इनकी विधवा माता पर रहा। कुछ बडे होने पर इन्होने बँगला भाषा मे रामायण पढना सीख लिया। इनके घर के पास एक और बगाली बाबू रहते थे। वे नित्य इनसे रामायण का पाठ सुनते और रोज कुछ पैसे इन्हे दे दिया करते थे, जिन्हे ये अपने विद्याध्ययन मे खर्चते थे। खास मेरठ मे कोई शिक्षा का उत्तम प्रबंध न था। जब इनकी अवस्था ९ वर्ष की हो गई तो मेरठ से तीन चार कोस पर सर्धना के स्कूल मे ये पढने के लिये जाने लगे। इनका विद्याध्ययन की ओर असाधारण अनुराग इसीसे प्रकट होता है कि उस किशोर अवस्था मे ये नित्य तीन चार कोस जाते और आते थे।

इनकी आर्थिक अवस्था बहुत ही शोचनीय थी, इसलिये इन्हो ने १३ वर्ष की अवस्था मे सर्धना मे १६) रु० मासिक पर नौकरी कर ली, परन्तु जब इन्होने देखा कि यदि इंजीनियरिंग का अभ्यास कर लिया जाय तो कुछ बड़ी तनख्वाह मिल सकती है तो इन्होने

गणित का अभ्यास किया और थोड़े ही दिनो मे परीक्षा पास करके वे ५०) रु० मासिक पाने लगे। इसी प्रकार इन्होने अपने कठिन परिश्रम और अपनी कार्यनिपुणता से अपनी आय १६) रु० से लेकर सात सौ ७००) रु० मासिक तक बढाई। नवीनचद्र राय ने केवल अपनी आर्थिक अवस्था ही नहीं सुधारी बरन् इसीके साथ साथ इन्होने अपनी आध्यात्मिक उन्नति भी खूब की। विद्या से इन्हे विशेष प्रेम था। इन्होने केवल अपनी चेष्टा से अँगरेजी, हिंदी, उर्दू, फारसी और संस्कृत मे असीम योग्यता प्राप्त कर ली और विविध भाषाओं मे विविध विषयो के ग्रंथो को पढ कर मनुष्यजीवनसंबधी यावत् धार्मिक तत्त्वों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। बाबू नवीनचद्र राय, योगी, संन्यासी, फकीर, पंडित, मौलवी, पादरी आदि सब मतों के धार्मिक पुरुषो से मिलते और धर्म के तत्त्वो की जाँच किया करते थे। अन्त मे इन्होने एक परब्रह्म परमात्मा को ही सब का नियता मान कर उसी पर अपनी श्रद्धा और भक्ति स्थिर की।

बाबू नवीनचद्र राय जैसे सब विषयों के प्रसिद्ध पंडित थे वैसे ही सदाचारी, जितेंद्रिय और दानशील भी थे। वे सदा दीन दुखी लोगों की सहायता करने और शिक्षा का प्रचार करके देशहित करने मे तत्पर रहते थे। पंजाब मे स्त्री-शिक्षा का बीज बोनेवाले ये ही महाशय हैं। लाहौर मे सबसे पुराना नार्मल फीमेल स्कूल इन्हीं का स्थापित किया हुआ है। इन्होंने लाहौर मे सद् विषयों पर वार्तालाप करने के उद्देश्य से एक सत्सभा खोली थी। पंजाब विश्वविद्यालय और ओरिएंटल कालिज के आप प्रधान व्यवस्थापक थे। पंजाब युनिवर्सिटी के फ़ेलो भी थे और कई वर्ष तक इन्होने आफिशियेटिंग रजिस्ट्रार और प्रिंसिपल का काम भी किया था।

शिक्षा-विभाग से घनिष्ठ संबंध होने पर इन्होने संस्कृत और हिंदी भाषा मे अच्छी अच्छी पुस्तको की रचना की जिनमे से बहुतेरी पुस्तके अब तक पजाब युनिवर्सिटी मे पढाई जाती हैं।

इन्होने हिंदी मे ज्ञान-प्रदायिनी-पत्रिका निकाली थी और सोशल-रिफार्म-सबंधी कई पत्र निकाले और विधवा-विवाह पर एक पुस्तक रची थी। ये अपने अनुष्ठान के बडे दृढ और पूरे परो-पकारी पुरुष थे। इन्होने ग़रीबो को ओषधि देने के लिये निज के कई दवाखाने खोले थे, तथा ये और भी जनसमुदाय के उपकार के कामो मे सदा दत्तचित्त रहते थे। परिश्रमी तो इतने थे कि वृद्ध अवस्था मे भी नवीन विषयो को घोखते समय पाठशाला मे पढने वाले बच्चो का सा परिश्रम करते थे। इनका सिद्धात यह था कि ज्ञान और विद्या के समुद्र का पारावार नही है इसलिये मनुष्य को यावज्जीवन विद्योपार्जन मे परिश्रम करना चाहिए।

सन् १८८० ई० मे इन्होने सरकार से पेशन ले ली और रत-लाम रियासत के दीवान हुए, पर वहाँ से भी शीघ्र चले आए और खंडवे के पास एक गाँव बसा कर उसीमे रहने लगे। इस गाँव का नाम इन्होने ब्रह्मगाँव रक्खा था क्योकि इसमे अधिकतर ब्राह्मण ही बसाए गए थे। सन् १८६० ई० मे इनका परलोक वास हुआ।

---

(७) डाक्टर ए एफ़ रुडाल्फ हर्नली, सी आई ई.।

वैसे तो डाकृर हर्नली योरोप महाद्वीप भर मे एक सुप्रसिद्ध विद्वान् पुरुष है पर हमारे हिंदी-हितैषी महानुभावो मे भी आपका आसन सबसे ऊँचा है। अपनी मातृ-भाषा की उन्नति के लिये चेष्टा करना हमारा तो कर्तव्य ही है परतु आपने विदेशी होकर भी इस ओर विशेष ध्यान दिया और हिंदी-भाषासबंधी अत्यत कठिन प्रश्नो के हल करने का उद्योग किया—यह हिंदी के लिये विशेष गौरव और सौभाग्य की बात है।

डाकृर हर्नली के पूर्वज, जर्मन घराने के एक सुप्रसिद्ध वश से सबंध रखते है। इनके पिता रवरड सी० टी० हर्नली बहुत दिनो तक भारतवर्ष मे पादरी थे। डाक्टर हर्नली का जन्म १९ अक्टूबर सन १८४१ को आगरे के पास सिकदरा मे हुआ था। सात वर्ष की अवस्था होने पर डाक्टर साहिब शिक्षा पाने के लिये जर्मनी को भेज दिये गए। वहाँ एक सुयोग्य शिक्षक द्वारा कुछ दिन घर पर शिक्षा पाकर स्कूल मे भर्ती हुए और १७ वर्ष की अवस्था तक स्कूलो का अध्ययन समाप्त करके आप सन् १८५८ ई० मे प्रोफेसर स्टफेसर के पास दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने लगे और दो वर्ष मे दर्शनशास्त्र का अध्ययन समाप्त करके सन् १८६० मे आप संस्कृत का अध्ययन करने के लिये लंदन नगर को गए। इसके पाँच वर्ष बाद सन् १८६५ मे आप काशी के जयनारायण कालिज मे अध्यापक नियत होकर भारत-भूमि मे सुशोभित हुए।

इसी अध्यापक अवस्था मे इन्होने "गौडीय भाषा अर्थात

डाक्टर ए. एफ़. रुडाल्फ़ हर्नली, सी. आई. ई.।

भारतवर्षीय भाषाओ के समुदाय के व्याकरण" पर एक लेख लिखा जो कि बंगाल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका मे प्रकाशित हुआ। इस लेख से देशदेशातर मे आपके पाडित्य का प्रकाश फैल गया। उस समय बहुतेरे लोगों का ऐसा विश्वास था कि हिदी, सस्कृत की नही बरन् अनार्य भाषाओ की शाखा है परतु हमारे डाक्टर महाशय ने संस्कृत और प्राकृत के भिन्न भिन्न व्याकरणो के नियमो और साधारण बोलचाल की तथा कविता की हिदी के शब्दो को मिलान करके यह सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया कि हिदी भाषा सस्कृत और प्राकृत से निकली है, इसका अनार्य भाषाओ से कोई सबंध नही है।

डाक्टर हर्नली सन् १८७३ मे इंगलैंड को चले गए और वहाँ आप सन् ७७ तक उक्त व्याकरण की रचना मे लगे रहे। सन् १८८० ई० मे इस व्याकरण के प्रकाशित होते ही आप एक बडे भारी भाषा-तत्वज्ञ पंडित माने जाने लगे। सन् ८२ मे (Institute de France) इंस्टीट्यूट डी फ्रास नामी पेरिस की एक सभा ने आपको स्वर्ण-पदक अर्पण किया जो कि उस सभा से प्रतिवर्ष सर्वोत्तम ग्रथ के लिये दिया जाता था।

सन् १८७८ मे डाक्टर साहब पुन. भारतवर्ष को लौट आए और कलकत्ते के केथिड्रिल मिशन कालेज के प्रधान प्रिसिपल नियत हुए। सन् १८८५ मे आपने डाक्टर ग्रियर्सन के साथ विहारी भाषा का कोष सम्पादित करना आरम्भ किया। पर शोक है कि वह पूरा न हो सका। सन् १८८६ मे आपका ध्यान चदबरदाई-कृत पृथ्वीराज रासो की तरफ आकर्षित हुआ। आपने २६ वे प्रस्ताव से ३४ वे प्रस्ताव तक उसे सम्पादित करके प्रकाशित भी किया और २७ वे समय का अनुवाद भी छपवाया। परतु जब आपको इस ग्रंथ के

चदबरदाई कृत होने मे संदेह हुआ तब इस कार्य को बद कर दिया।

सन् १८८८—९० मे आपने "उवासग दसराओ" नामक जैन-धर्मावलम्बी गृहस्थो के उपासना ग्रंथ को प्रकाशित किया जिससे जैनियों मे आपका नाम हो गया। इसी अवसर मे पूर्वीय तुर्कि-स्तान से प्राप्त हुई "बाबर की पोथी" नामक एक हस्तलिखित पुस्तक का जो कि सन् ४५० ई० के आस पास की लिखी हुई थी आपने सम्पादन किया।

सन् १८९८ ई० मे गवर्नमेंट आफ इडिया ने हर्नली साहब को मध्य एशिया से प्राप्त सस्कृत ग्रथों की जाच पर नियत किया। इस कार्य को भी आपने बडी योग्यता से सम्पादित किया। सन १८७९ ई० मे एशियाटिक सोसायटी ने आपको भाषा-तत्त्व-सबधी मंत्री चुना। इस पद पर आपने १२ वर्ष तक कार्य किया।

लिखा जा चुका है कि हमारे चरित्र-नायक सन ७८ में कथिड्रिल मिशन कालेज के अध्यापक नियत हुए थे। तीन वर्ष बाद आप कल-कत्ता मदरसा कालेज के अध्यक्ष और प्रेसिडेंसी कालेज के अध्यापक नियत हुए। उसी अवस्था मे सरकार की ओर से पुरातत्त्वसबंधी जाँच की रिपोर्ट लिखने का काम आपको सौंपा गया। उसके पूरा होने पर सन् ९७ ई० मे स्वर्गीय महारानी विक्टोरिया ने आपको सी० आई० ई० की पदवी प्रदान की।

डाक्टर हर्नली सन् ९९ मे चिरकाल के लिये इँगलैंड को चले गए। परन्तु उनकी सुकीर्ति अब लो यहाँ स्थिर है।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ।

(८) पंडित बालकृष्ण भट्ट ।

पंडित बालकृष्ण भट्ट के पूर्वपुरुष मालवा देश के निवासी थे। परतु वे किसी कारण-विशेष से कालपी के पास बेतवा नदी के किनारे जटकरी गाँव मे आ बसे। पडित जी के प्रपितामह श्याम जी एक चतुर और विद्वान् पुरुष थे। अस्तु वे राजा साहब कुलपहाड के यहाँ एक उच्च पद पर नौकर हो गए। उनके दो स्त्रियाँ थी जिनसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वे अपने सबसे छोटे पुत्र विहारीलाल पर अधिक स्नेह रखते थे इसलिये अत समय अपनी सब सम्पत्ति का अधिकार उन्ही को दे गए। पडित विहारीलाल जटकरी से आकर प्रयाग मे रहने लगे। इनके जानकीप्रसाद और वेणीप्रसाद दो पुत्र हुए। पडित बालकृष्णजी वेणीप्रसादजी के पुत्र हैं। वे स्वय पढे लिखे तो बहुत न थे पर इस ओर उनके चित्त की प्रवृत्ति और रुचि विशेष थी।

पडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म सवत् १९०१ मे हुआ था। १८४४ इनकी माता बडी विदुषी थी इसलिये इन्हे जन्म से ही विद्याध्य-यन का व्यसन लग गया। कुछ बडे होने पर इनके पिता और चाचा आदि ने चाहा कि यह बालक दुकानदारी के काम मे दत्तचित्त हो कर व्यापार-कुशल हो। परतु ये उस ओर ध्यान नही देते थे और अपने पढने लिखने मे लगे रहते थे। ऊपर से माता का यही अनु-शासन था कि बेटा तुम खूब पढो। तदनुसार ये १५-१६ वर्ष की अवस्था तक सस्कृत पढते रहे।

सन् ५७ के ग़दर के पश्चात् देश मे अँगरेजी राज्य का दब-दबा होने से अँगरेजी भाषा का मान बढने लगा। अस्तु, इनकी

चतुरा और दूरदर्शिनी माता ने इन्हे अँगरेजी पढने की प्रेरणा की। माता की आज्ञा मान कर ये एक मिशन-स्कूल मे भर्ती हो गए। वहाँ इन्होने एट्रेंस तक शिक्षा पाई और बाइबिल की परीक्षा मे कई बार इनाम भी पाया। पर इससे यह न समझना चाहिए कि इनकी धार्मिक श्रद्धा मे भी कुछ बट्टा लगा। ये अपने हिंदू धर्म पर हृदय से दृढ थे और इसी कारण से उस स्कूल के पादरी हेड मास्टर से वाद विवाद हो उठने पर इन्होने स्कूल छोड दिया।

मिशन स्कूल छोड कर ये पुन सस्कृत का अध्ययन करने लगे। व्याकरण और साहित्य का ख़ूब मनन किया। इसी बीच मे ये जमुना मिशन स्कूल मे अध्यापक हो गए परतु अपने धर्म के अटल पक्ष-पाती होने के कारण इन्हे यह अध्यापकत्व भी छोडना पडा।

स्वतत्रता की धुन सवार होने के कारण ये बहुत दिनों तक बेकार बैठे रहे, परतु इसी बीच मे जब इनका विवाह हो गया तब कमाने की फिक्र हुई और कोई अच्छा व्यापार करने की इच्छा से ये कलकत्ता चले गए, परतु शीघ्र ही लौट भी आए। कलकत्ते से आकर ये पहिले की तरह हाथ पर हाथ रख कर बैठे न रहे बरन् अपने अमूल्य समय को सस्कृत-साहित्य के अध्ययन और हिंदी-साहित्य की सेवा मे बिताने लगे। उस समय के समस्त साप्ताहिक और मासिक हिंदी-पत्रो मे लेख लिख लिख कर भेजने लगे।

इसी समय प्रयाग के कई शिक्षित युवको ने सन् १८७७ ई० मे हिंदीप्रवर्द्धिनी नाम की एक सभा स्थापित की और निश्चय किया कि प्रति सभासद से पाँच पाँच रुपया चंदा इकट्ठा करके एक मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय, तदनुसार "हिंदी-प्रदीप" का जन्म हुआ और भट्टजी उसके संपादक हुए। जब "हिंदी-प्रदीप" का प्रकाश हुआ उन्ही दिनो मे सरकार ने प्रेस एक्ट पास किया

जिससे भयभीत होकर "हिदी-प्रदीप" के अन्य हितैषियों ने तो उससे नाता तक तोड़ दिया परंतु इन्होंने उसे हवा भी न लगने दी। मातृ-भाषा की ओर अविचल भक्ति के कारण ये उसे चलाते रहे।

बाबू हरिश्चंद्र कहा करते थे कि हमारे बाद दूसरा नंबर भट्ट जी का है सो ठीक ही था। इनके लिखे हुए कलिराज की सभा, रेल का विकट खेल, बालविवाह नाटक, सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी, जैसा काम वैसा परिणाम, आचार विडबना, भाग्य की परख, षट् दर्शन सग्रह का भाषानुवाद, गीता और सप्तशती की समालोचना आदि लेख देखने ही योग्य हैं।

पंडित बालकृष्णजी हिदी के एक सच्चे हितेच्छु और अच्छे लेखक हैं। आप स्वभाव के सादे सत्यप्रिय सज्जन हैं। बडे हँसमुख भी हैं। आप सनातन-धर्म के अनुयायी हैं, पर अधपरपरा के पक्षपाती नही हैं। आपने कई वर्षो तक प्रयाग की कायस्थपाठशाला मे संस्कृत के अध्यापक का काम किया है। कायस्थपाठशाला से संबंध छूटने के कुछ काल अनतर हिदी-प्रदीप भी बद हो गया। इस समय आप काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के "हिदी-शब्दसागर" नाम के कोष के संपादन कार्य मे योग दे रहे हैं।

———

(६) बाबू तोताराम ।

बा बू तोतारामजी कायस्थ थे । इनका जन्म श्रावणशुक्ला १० सवत् १९०४ मे हुआ था । इनके पिता लाला ज्ञानचद, सासनी स्टेशन के पास नगलासिंह मे रहते थे । पर फिर ये गौहाना मे जा बसे और यही पर एक मदरसा स्थापित किया ।

यद्यपि अलीगढ के जिले मे उर्दू और फारसी का अधिक प्रचार होने के कारण बाबू तोताराम के घर के सब लोग उर्दू फारसी मे ही प्रवीण थे परतु इनकी घर की भाषा हिंदी थी और घर की स्त्रियो तक को हिदी मे रामायण पढने का अभ्यास था । इसीसे इन्हे आरभ मे हिदी की शिक्षा दी गई । इन्होने अध्ययन मे ऐसी तीव्रता दिखलाई कि साल भर मे ही साधारण गणित और लिखने पढने योग्य हिंदी सीख ली । तब इनके पिता ने इन्हे सासनी के सरकारी स्कूल मे बिठाया । वहाँ की पढ़ाई भी इन्होने लगे हाथो समाप्त की और अँगरेजी भाषा की शिक्षा पाने के लिये अलीगढ के उस स्कूल मे जा भरती हुए जो कि अब अलीगढ कालेज के नाम से प्रसिद्ध है ।

यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि इनके प्रारभिक विद्यागुरु पंडित सोमजी बडे शातशील सज्जन और धर्म मे श्रद्धावान् साधु पुरुष थे । बडे होने पर बाबू तोतारामजी भी वैसे ही हुए । घर से बाहर एक आलीशान शहर मे स्वतत्र रहते हुए भी इनके आठों पहर विद्याध्ययन मे व्यतीत होते थे । सन् १८६३ मे इन्होने एट्रेंस पास कर लिया और फिर भी आगे पढने के लिये आगरे के सेंट जांस कालेज मे भरती हुए । यहाँ आप जिस समय बी० ए० क्लास मे पढ़

बाबू तोताराम ।

रहे थे उसी समय इनके पिता का देहात हो गया। दूसरे आँखों मे भी कुछ रोग हो गया जिससे इन्हे डाक्टर के कहने से पढना छोड देना पड़ा।

पढना छोड देने के थोडे ही दिन बाद आप फ़तहगढ स्कूल के हेड मास्टर नियत हुए और फिर आपकी बनारस को बदली हो गई। यहाँ इनका हिंदी-प्रेम और भी बढ गया। इन्होने यहाॅ "केटो-कृतात" नामक पुस्तक हिंदी मे लिखी। फिर बँगला, गुजराती, महाराष्ट्री आदि भाषाओ का अध्ययन किया और कानून पास करके नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

इस प्रकार सेवा-वृत्ति से स्वतत्र होकर इन्होने सन् १८७७ ई० मे अलीगढ मे अपना छापाखाना खोला और वही से भारत-बंधु नामक हिंदी का साप्ताहिक पत्र निकाला। इसके दूसरे वर्ष इन्होने सयुक्त प्रात के छोटे लाट की सहायता से लायल-लाइब्रेरी नामक पुस्तकालय स्थापित किया।

बाबू तोतारामजी हिंदी भाषा के अनन्य शुभचिंतक थे, इस विषय मे इन्होने यथासाध्य परिश्रम किया। इन्होंने एक भाषा-संवर्द्धिनी सभा स्थापित की थी जिसका यह उद्देश्य था कि हिंदी भाषा की अच्छी अच्छी पुस्तके छपा कर सस्ते मूल्य पर बेची जायँ। इन्होने स्वय कई पुस्तके लिख कर सभा के समर्पण की थीं जिन मे से एक स्त्री-सुबोधिनी है। आप अलीगढ की प्रदर्शिनी मे लिपि-विभाग के मत्री थे। अस्तु, आपने हिंदी-लिपि वालो को अच्छे अच्छे इनाम दिला कर उनका उत्साह दुगना किया और इसी तरह जब हिंदी भाषा की ओर से सर ए टनी मेक्डानल के यहाॅ डेपुटेशन जाने वाला था तो आपने कायस्थ-कानफरेंस के सभापतित्व मे ६००० कायस्थो को हिंदी के पक्ष मे राय देने को बाध्य किया था।

इन्होने 'राम-रामायण' नाम से वाल्मीकीय रामायण का भाषापद्यानुवाद करना आरंभ किया था, परंतु खेद है कि इनका यह कार्य पूरा न हो सका। इन्होने सस्कृत की अनेक पुस्तको का अनुवाद करके या करा के नवलकिशोर और व्यंकटेश्वर आदि प्रेसों में छपवाया था।

बाबू तोतारामजी जैसे मातृभाषा के प्रेमी और धार्मिक पुरुष थे वैसे ही सच्चे देश-हितैपी और समाज-प्रिय भी थे। इन्होने समय समय पर अकाल-पीडित प्रजा की सहायता की। जिस समय आगरा-कालेज टूट कर अलीगढ-कालेज मे मिलाया जाने वाला था तो इन्होने उसे कायम रक्खा। और और भी इसी प्रकार के देश-हितकर काम किए।

आप वैष्णव धर्म्मावलबी थे, परतु स्वामी दयानंदजी के भी बडे भक्त थे। आप बडे सदाचारी और सुशीलता के तो आदर्श थे। आपका देहात ता० ७ दिसम्बर सन् १९०२ को हुआ।

राजा रामपालसिंह ।

(१०) राजा रामपालसिंह ।
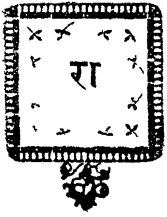
जा साहिब का जन्म एक प्रसिद्ध और प्रतापी राजकुल मे हुआ था। आप अवध प्रात के अतर्गत प्रतापगढ़ के तअल्लुकेदार मृत राजा हनुमंतसिहजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीलालप्रतापसिहजी के इकलौते पुत्र थे। आपका जन्म सवत् १९०५ की भादो सुदी ४ को हुआ।।

राजा साहिब बाल्यावस्था ही से अत्यत तीव्रबुद्धि और चचल-स्वभाव के थे, पर साथ ही विद्याध्ययन मे अनुराग भी स्वाभाविक था। आपने सात वर्ष की अवस्था मे हिंदी मे पूर्णरूप से योग्यता प्राप्त कर ली थी। नागरी पढ लेने पर आपने फारसी का अध्ययन आरभ किया और पॉच वर्ष मे फारसी मे पूर्ण योग्यता प्राप्त करके अँगरेजी और सस्कृत का अध्ययन आरभ किया।

इसमे भी राजा साहिब ने अभ्यास और बुद्धिबल से पॉच छ वर्ष मे ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली कि आप संस्कृत के क्लिष्ट और गूढ छदो का मर्म समझने और अँगरेजी मे वार्तालाप करने लगे थे।

भिन्न भिन्न भाषाओ के और भिन्न भिन्न मतमतातरो से सबध रखनेवाले ग्रथो को पढ कर राजा साहिब के हृदय मे नवीन सभ्यता ने स्थान प्राप्त कर लिया। इसलिये वे एक मात्र परमात्मा को अपना आराध्य देव मान कर पुरानी लकीर के फकीर रहने के विरुद्ध हो गए। इससे इनके सब सबधी और इनके पितामह राजा हनुमतसिहजी स्वय इनसे अप्रसन्न हो गए। परतु इन्होने किसी

की ओर ध्यान न दिया और अपने सिद्धात पर दृढ रहे। १८ वर्ष की अवस्था मे इन्होने आनरेरी मजिस्ट्रेटी स्वीकार की और इसके अनतर मध्यम और उच्च श्रेणी की परीक्षाओ को पास किया। राजा साहिब एक न्यायशील और देशहितैषी पुरुष थे। इसलिए अदूरदर्शी लोगों की दृष्टि मे कुछ खटकने लगे।

अस्तु, राजा साहिब ने इँगलैंड जाने की, इच्छा प्रकट की, इस पर भी पुराने विचार के लोगो ने असमति प्रकट की परतु आप को तो उस उन्नति-शाली देश की सामाजिक, राजनैतिक और व्यापारिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने की धुन सवार थी। इसलिये आपने इँगलैंड की यात्रा की। आपकी पतिव्रता धर्मपत्नी भी आप के साथ गईं। परतु दो साल इँगलैंड मे रहने पर आपकी धर्मपत्नी का शरीरपात हो गया। तब आपने एक अँगरेजी रमणी से विवाह किया और घर को लौट आए। परन्तु थोडे ही दिन कालाकांकर मे रह कर आप पुन. इँगलैंड को चले गए और वहाँ जर्मन, फ्रेंच, लेटिन आदि भाषाओं और गणित का अभ्यास करने लगे। आपने अपने देश की सेवा करने की इच्छा से सन् १८८३ मे वहाँ अँगरेजी-हिंदी मे "हिंदोस्थान" नाम का पत्र भी निकाला। और उसके द्वारा इँगलैंड-वासी लोगों को इस देश की दशा का वास्तविक परिचय देने लगे। इसके सिवाय आप वहाँ की प्रत्येक सभा सोसायटी मे जाते और मनोहर व्याख्यान द्वारा इस देश-वासियों के दु:ख सुख की कथा सुनाते थे।

उस समय इस देश के जो विद्यार्थी इँगलैंड मे विद्याभ्ययन करने जाते थे राजा साहिब उन सब का बडा सत्कार करते थे। उन्हे अपने यहाँ बुलाते, समय समय पर भोज देते और उनके पठन पाठन मे यथासाध्य आर्थिक सहायता भी करते थे। सन् १८८५ ई० मे आप ने इँगलैंड से आ कर कालाकाँकर से हिंदी मे "हिंदोस्थान"

नाम का दैनिक पत्र निकालना आरभ किया। जो उनके जीवन में बराबर चलता रहा। आपने अँगरेजी मे भी 'इ डियन यूनियन' नाम का एक पत्र निकालना आरभ किया था परतु कुछ दिनो के बाद वह बद कर दिया गया। तब से "हिंदोस्थान" की एक दूसरी प्रति अँगरेजी मे प्रकाशित होती रही।

आपने केवल हिंदी जाननेवालो को सहज मे अँगरेजी सीख लेने के लिए "दी सेल्फ टीचिग बुक्" नाम की एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी है और "रिसेट ट्रिप टू यूरप" नाम की अँगरेजी भाषा की पुस्तक मे आपने अपनी इँगलैंड-यात्रा का वर्णन लिखा है। आप जिस तरह अपने देश की कला कौशल और व्यापार की उन्नति चाहते थे वैसे ही मातृभाषा हिंदी के भी परम शुभचितक थे। आप के राज-नैतिक और सामाजिक सिद्धात सराहनीय हैं। आप अवध के तअल्लु-क़ेदारो मे एक माननीय रईस थे। आप कई बेर सयुक्त प्रदेश की कौसिल मे प्रजा के प्रतिनिधि हुए थे। सन् १९०९ ई० मे आप का शरीरात हुआ।

---

(११) बाबू गदाधरसिंह ।

बाबू गदाधरसिह के पूर्वज काशी के रहने वाले थे। इनके पितामह खोजूसिह पुलिस मे एक साधारण सिपाही थे। इनके दो पुत्र हुए, रामसहायसिह और गनेसूसिह। रामसहायसिह ने फारसी मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी इसलिये वे थानेदार के पद को पहुँच गए। और कुछ दिनों के बाद कमिश्नर के दूसरे मुशी नियत हुए। इस समय राजा शिवप्रसाद मीरमुंशी थे और बाबू रामसहायसिह और राजा साहिब से ख़ूब पटती थी। हमारे चरित-नायक बाबू गदाधरसिंह इन्ही बाबू रामसहायसिंह के पुत्र थे। बाबू गदाधरसिह का जन्म सन् १८४८ ई० मे हुआ था। जब इनकी अवस्था केवल पांच वर्ष की थी तो इनके पिता बाबू रामसहायसिह का देहात हो गया जिससे इनके संबधियो ने इनके घर की सब धन-सम्पत्ति नष्ट कर डाली। परतु इनके पिता के मित्रो ने इनकी यथा-साध्य सहायता की और सन् १८५७ ई० मे पढने का लग्गा लगा दिया। दैवात् सन् १८६० मे इनकी माता का भी परलोकवास हो गया और ये निपट अनाथ हो गए। पर इन्होने हिम्मत न हारी और स्वयं सासारिक व्यवहारो का अनुभव करते हुए सन् १८६८ मे एंट्रेंस पास कर लिया।

एंट्रेंस पास कर लेने पर राजा शिवप्रसाद इन्हे १००) मासिक वेतन की सरकारी नौकरी दिलाते थे पर इन्होने उसे अस्वीकार कर दिया और स्वतत्र जीवन बिताने की इच्छा से कोई व्यापार करने के लिये बाबू हरिश्चद्र जी की सहायता चाही। बाबू साहिब ने इन्हें

बाबू गदाधरसिंह ।

तुरत १०००) रु० दिए और ये दो एक मित्रों के साथ कलकत्ते को चले गए। वहाँ से कुछ किराना आदि खरीद कर लाए, पर इनका व्यापार चला नही। इसलिए इन्हे विवश हो कर १६) रु० मासिक पर हरिश्चद्र स्कूल मे नौकरी स्वीकार करनी पडी।

सन् १८७१ मे राजा शिवप्रसाद की सहायता से बाबू गदाधरसिह बदोबस्त-विभाग मे नौकर होकर कानपुर को चले गए। वहाॅ रह कर इन्होने पहिले पहिल हिदी मे कादम्बरी उपन्यास लिखा जिसका कुछ भाग हरिश्चद्रचद्रिका मे प्रकाशित हुआ और फिर सन् १८७८ मे वह पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। सन् १८७४ मे बदोबस्त का काम समाप्त हो जाने पर ये आजमगढ मे क़ानूनगो नियत हुए। कुछ दिनों के बाद कोर्ट आफ़ वार्डस् मे नियत होकर ये जौनपुर के राजा के यहाॅ आए, पर थोड़े ही दिनो मे फिर अपने पद पर आजमगढ को वापस चले गए। वहाॅ इन्होने सन् १८८३ तक काम किया और इसी बीच मे दुर्गेशनंदिनी का भाषानुवाद किया।

मन् १८८३ ई० मे पेशकार के पद पर नियत होकर इनकी आजमगढ से मिर्जापुर को बदली हो गई। यहाॅ इन्होने सन् १८६३ तक बडी योग्यता से काम किया। मिर्जापुर मे ही इन्होने वगविजेता का भाषानुवाद करके उसे छपवाया और स्त्री का परलोकवास हो जाने पर सन् १८८४ ई० मे अपने उत्तराधिकारी स्वरूप अपने आर्यभाषा पुस्तकालय को स्थापित किया।

सन् १८६० तक यह पुस्तकालय मिर्जापुर मे रहा, परतु इस सन् के अंत मे इन्होने बनारस आकर इसे हनुमान सेमिनरी स्कूल के प्रबध मे छोड दिया। इसी बीच मे इनकी इटावे को बदली हो गई और यहाॅ न रहने के कारण इनके प्यारे पुस्तकालय की उन्नति के बदले अवनति होने लगी। इन्होने इटावे मे छ: वर्ष काम किया

और उथेलो, रोमन-उर्दू की पहली किताब और भगवद्गीता ये तीन ग्रंथ लिखे।

लगातार बहुत दिनो तक कार्य करने से व्यथित होकर तथा अपने पुस्तकालय की स्थिति सुधारने की इच्छा से इन्होंने दो वर्ष की छुट्टी ली और सन् १८९६ ई० के जुलाई मास मे ये बनारस चले आए। यहाँ सन १८९३ ई० मे काशी-नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित हो चुकी थी। और सन् १८९४ ई० से आप उसके एक सभ्य भी थे। अस्तु, जब इन्होने सभा का उचित प्रबध देखा तो अपना आर्यभाषा पुस्तकालय सभा को समर्पण कर दिया जो अब तक उसकी रक्षा मे उन्नति कर रहा है। मरने के पहिले इन्होने अपनी सब सपत्ति पुस्तकालय के नाम लिख दी थी। पर मुकद्दमे के चलने से वह सब उसी मे समाप्त हो गई। काशी मे आकर भी इन्होने दो एक ग्रंथ लिखे परतु इनका सब से उत्तम और अतिम लेख ऐतिहासिक और पौराणिक विवरण की एक डायरी थी परतु वह अधूरी ही रह गई।

बाबू गदाधरसिह का देहात २९ जूलाई सन १८९८ ई० को हुआ। वे एक स्वच्छ और उदार स्वभाव के पुरुप थे तथा उच्च अभिलाषी और देशहितैषी और मातृभाषा के सच्चे प्रेमी थे।

रायबहादुर पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र, एम० ए० ।

(१२) रायबहादुर पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र एम॰ ए॰

रायबहादुर पडित लक्ष्मीशकर जी सरयूपारी ब्राह्मण थे, इन के पिता का नाम रामजसन मिश्र था। वे सस्कृत कालेज बनारस मे प्रोफेसर और काशी के प्रतिष्ठित पुरुषो मे थे।

पंडित लक्ष्मीशकर का जन्म सन् १८४९ ई॰ मे हुआ था। ये लडकपन से ही सुशील, गभीर और तीव्रबुद्धि थे। आठ वर्ष की अवस्था होने पर ये बनारस कालेज मे अँगरेजी पढने के लिये बैठाए गए। इन्होने प्रति वर्ष योग्यतापूर्वक इम्तिहान पास किया, कभी फेल नही हुए। सन् १८६९ ई॰ मे बी॰ ए॰ पास किया। यद्यपि गणित एक क्लिष्ट विषय है परन्तु आपकी गणित पर ही विशेष रुचि रहती थी। इसीसे सन् १८७० ई॰ मे आप ने गणित मे ही 'आनर्स' के साथ एम॰ ए॰ पास किया।

पंडित लक्ष्मीशकर जैसे तीव्रबुद्धि थे वैसे ही सुयोग्य भी थे। उस समय बनारस कालेज के प्रधान अध्यापक ग्रिफिथ साहेब इनकी योग्यता पर मुग्ध थे। उन्होंने इन्हे बनारस कालेज मे गणित का अध्यापक नियत किया। इनकी पढाने की शैली भी ऐसी अच्छी थी कि गणित ऐसे कठिन विषय को सहज मे समझा देते थे।

उस समय बनारस मे "बनारस इस्टीट्यूट" नाम की एक सभा थी। डाक्टर थीबो, सर सैयद अहमदखॉ और राजा शिवप्रसाद आदि बडे बडे योग्य पुरुष उसके सभासद थे। पडित लक्ष्मीशकर भी उसमे समिलित थे। ये उस सभा मे बडे गूढ विषयों पर ऐसे अच्छे व्याख्यान देते थे कि जिनकी बड़े बडे विद्वान् प्रशसा करते थे।

पडित लक्ष्मीशकर समय का बडा आदर करते थे। वे अपना किंचित् मात्र भी समय व्यर्थ न जाने देते थे। नित्य के आवश्यक कामो से जो समय बचता उसमे आप उत्तमोत्तम पुस्तके लिखा करते थे। पहिले पहिल इन्होने त्रिकोणमिति (Trigonometry) नामक एक ग्रंथ लिखा जिसके लिए इस प्रात की गवर्नमेट ने इन्हे एक हजार रुपया इनाम दिया। इसके पीछे हिंदी मे गणितकौमुदी की रचना की। यह पुस्तक अब तक पाठशालाओ मे पढाई जाती है।

सात वर्ष तक पडित जी गणित के अध्यापक रहे। इसके बाद सन १८७७ ई० मे आप विज्ञानशास्त्र के अध्यापक हुए। इस समय इन्होने विज्ञान पर पुस्तके लिखना आरंभ किया और पदार्थविज्ञान-विटप, प्राकृतिक भूगोलचद्रिका, वायुचक्रविज्ञान, स्थिति-विद्या, गति-विद्या आदि नाम की परम उपयोगी पुस्तके लिख कर हिंदी के भंडार मे विज्ञानशास्त्र का बीज बो दिया।

बनारस नार्मल स्कूल के हेड मास्टर बाबू बालेश्वरप्रसाद जी हिंदी मे काशीपत्रिका नाम की एक पाक्षिक पत्रिका को स्वयं सपादन कर के प्रकाशित करते थे। सन् १८८५ ई० मे जब पडित लक्ष्मीशकर मिश्र बनारस ज़िले के स्कूलो के इंस्पेक्टर नियत हुए तब इन्होंने काशीपत्रिका के सब अधिकार इनको दे दिये। तब उसी संबध में इन्होंने काशी मे अपना चद्रप्रभा प्रेस खोला और उक्त काशीपत्रिका को साप्ताहिक रूप मे प्रकाशित करना आरंभ किया। यह पत्रिका अपने ढग की एक ही थी। इसे गवर्नमेट ने मदरसो के लिए स्वीकार किया था।

जिस समय पंडित लक्ष्मीशकर मिश्र इस्पेक्टर नियत हुए उस समय इस ज़िले के स्कूलो की पढाई की अवस्था बडी अनिश्चित थी। पंडित जी ने उसका यथोचित सुधार किया। गवर्नमेट ने इन्हे सन्

१८८८ मे इलाहाबाद की कमिश्नरी का इस्पेक्टर नियत किया। इन्होने दोनों जिले मे बडी योग्यता से कार्य्य किया। इनकी कार्य्य-प्रणाली से प्रसन्न होकर गवर्नमेट ने इन्हे सन् १८८९ ई० मे रायबहादुर की पदवी प्रदान की।

पडित लक्ष्मीशकर जी कलकत्ता और इलाहाबाद दोनों विश्वविलयो के फेलो थे। शिक्षा-सबधी क़ानून बनाने मे सदा इनकी समति ली जाती थी। सन् १८८२ ई० मे जब लार्ड रिपन ने शिक्षा कमिशन बैठाया था तो इस प्रात से आप ही प्रतिनिधि होकर गए थे। इन्होने कमिशन के प्रश्नो का बडो योग्यता से उत्तर दिया था। शिक्षा-विभाग मे आप का बडा आदर था। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के आप कई वर्षों तक सभापति रहे और उसकी प्रारभिक अवस्था मे उसकी उन्नति के मूल कारण हुए।

आप का देहात ता० २ दिसबर १९०६ ई० को हुआ।

---

(१३) भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ।

सुप्रसिद्ध सेठ अमीरचद के दोनो पुत्र राय रतनचद बहादुर और शाह फतहचद काशी मे आ बसे थे। शाह फतहचद के पौत्र बाबू हरखचद ने अपने ही सद्व्यवहार से असख्य सपत्ति कमाई और उसे सत्कार्य मे व्यय करके बडी बडाई भी पाई। इनके पुत्र बाबू गोपालचद हुए जो हिदी भाषा के बडे अच्छे कवि हो गए हैं। इन्होने पौराणिक आधार पर ४० काव्य-ग्रथ रचे और सस्कृत मे भी कुछ कविता की। इनके सुपुत्र बाबू हरिश्चद्र हुए।

भारतेदु बाबू हरिश्चद्र का जन्म तारीख ९ सितबर सन् १८५० ई० मे हुआ था। बाबू साहिब का स्वभाव चचल और बुद्धि तीव्र थी। जिस समय केवल सात वर्ष की अवस्था थी तभी आपने एक दोहा रच कर पिता को समर्पित किया था। उस पर प्रसन्न हो कर पिता ने इनको आशीर्वाद दिया कि तू अवश्य मेरा मुख उज्ज्वल करेगा। सो ऐसा ही हुआ भी। परतु जिस समय इनकी अवस्था ९ वर्ष की थी इनके पिता का परलोकवास हो गया जिससे इनकी स्वतत्र प्रकृति को और भी स्वच्छदता प्राप्त हो गई और ये सब काम मनमाने करने लगे। उसी समय इनकी पढाई का सिलसिला शुरू हुआ। पहिले तो इन्होने कुछ दिन राजा शिवप्रसाद से अँगरेजी पढ़ी, फिर कालेज मे बैठाए गए। आप कालेज जाते, अपना सबक भी याद कर ले जाते और अपनी विचित्र बुद्धि से पाठको को भी संतुष्ट रखते परतु मन लगा कर न पढ़ते थे। तीन चार वर्ष तक तो इनके पढ़ने पढ़ाने का सिलसिला ज्यो त्यो चलता

भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र ।

गया परंतु सन् १८६४ ई० मे अपनी माता के साथ ज्यो ही ये जगन्नाथ जी को गये त्यो ही इनका पढना लिखना भी छूट गया। परन्तु कविता की ओर विशेष रुचि बढ गई।

जिस समय ये जगन्नाथ जी से लौट आए तो इनके चित्त मे देशहित का अंकुर प्रस्फुरित हुआ। इनको निश्चय हो गया कि पाश्चात्य शिक्षा के बिना कुछ नहीं हो सकता इसलिए स्वयं पठित विषयो का अभ्यास करने लगे और अपने घर पर एक स्कूल भी खोल दिया जिसमे उस महल्ले के बहुत से लडके पढने आने लगे। समय पाकर यह स्कूल चौखंभा स्कूल के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आज कल यही स्कूल हरिश्चंद्र स्कूल कहलाता है। इसके दूसरे वर्ष सन् १८६८ ई० मे इन्होने "कविवचनसुधा" को जन्म दिया जिससे एक काशी के क्या जहाँ तहाँ के सब भाषा-कवियो की कविता प्रकाशित होने का द्वार खुल गया और जिसे पढते पढाते कई एक हिंदी-प्रेमी अच्छे लेखक हो गए। सन् १८७० मे इन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद मिला परन्तु कुछ दिन बाद आपने स्वयं इस पद को छोड दिया। सन् १८७३ मे आपने हरिश्चंद्र मेगजीन प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया परंतु केवल आठ अंक निकाल कर वह बन्द कर दिया गया।

वैसे तो बाबू हरिश्चंद्र हिंदी गद्य पद्य की रचना सन् १८६४ से करने लगे थे। परंतु सन् १८७३ मे इनकी लेखनी खूब परिमार्जित हो चुकी थी इसलिए अपने लेखन का आरंभ-काल इन्होने सन् १८७३ से माना है। इस वर्ष इन्होने पेनी रीडिंग (Penny Reading) नाम का समाज स्थापित किया, जिसमे हिंदी के अच्छे अच्छे लेखक लेख लिख लिख कर ले जाते अथवा समस्यापूर्ति कर के सुनाते थे। इसी वर्ष मे इन्होने कर्पूरमंजरी और चंद्रावली नाटकों की रचना की।

बाबू साहेब स्वय जैसे बुद्धिमान् विद्वान् चतुर और बहुकला-कुशल थे वैसे ही वह और और गुणी जनो का भी आदर किया करते थे। उनका उचित समान करते तथा उन्हे उचित पारितोपिक भी देते थे। इसीसे इनके यहाँ सदैव अच्छे अच्छे पडितो, कवियो और अन्य प्रकार के गुणी लोगो का जमाव रहता था।

सन् १८७३ ही मे आपने "तदीय समाज" नाम की एक सभा स्थापित की जिसका उद्देश्य केवल प्रेम और धर्मसंबधी विषयों पर विचार करना था। दिल्ली दरबार के समय इस समाज ने गोरक्षा के लिए एक लाख प्रजा के दस्तखत करवाए थे। इसी प्रकार इन्होने कई एक सभा समाजे स्थापित की, पत्र निकाले, या सहायता दे कर निकलवाए। और निज से पारितोषिक और इनाम दे देकर कई एक को कवि और सुलेखक बना दिया। इन्होने अधिकतर नाटक और कविता मे ही सब ग्रथ रचे, इनके रचित ग्रथो मे काव्यो मे प्रेम-फुलवारी, नाटको मे सत्य हरिश्चद्र, चद्रावली, धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों मे तदीयसर्वस्व और ऐतिहासिक रचना मे काशमीर-कुसुम, चुने हुए ग्रन्थ हैं। आप ऐतिहासिक विषय के बडे प्रेमी थे और आप की रचना प्राय सब ऐतिहासिक विषयो से सम्बन्ध रखती है।

बाबू हरिश्चद्र जी की हिंदी चिर ऋणी रहेगी। यह इन्ही के उद्योग का फल है कि आज दिन हिंदी का इतना प्रचार है। इसकी सहायता मे इन्होने अपने को सब प्रकार के सुखो से वंचित कर दिया। हिंदी आकाश मडल मे, जब कि घोर अंधकार छा रहा था, भारतेदु के उदय से वह प्रकाश फैला कि जिसकी कौमुदी से अब तक लोग आनदित और सुखी होते हैं। इन्हो बातों का स्मरण कर समस्त हिंदी समाचारपत्रो ने भारतेदु की उपाधि से इन्हे सम्मानित

किया। इस उपाधि का आदर राजा और प्रजा दोनो ने किया जो हिंदी के लिए एक विचित्र घटना है।

बाबू साहिब का स्वर्गलोकगमन ३५ वर्ष की अवस्था मे तारीख़ ६ जनवरी सन् १८८५ को हुआ।

---

(१४) पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या।

पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पड्या के पूर्वज गुजरात देश के रहनेवाले थे। वहाँ पर मुसलमानी राज्य मे अधिक उपद्रव होने से केशवराम पड्या अपने पाँच लडको सहित दिल्ली को चले आए। केशवराम के जेष्ठ पुत्र का नाम निर्भयराम था। केशवराम के पश्चात् निर्भयराम ते आगरे मे रहने लगे और उनके और और भाई, कोई पजाब मे, और कोई अन्य स्थानों मे जा बसे।

निर्भयरामजी के सतान के लोग साहूकारी का व्यापार करने लगे। मोहनलालजी के दादा गिरिधारीलाल तक तो यह कार्य्य अच्छा चलता रहा परतु उनके मरने पर प्रबध अच्छा न होने से काम बिगड गया। इसलिए मोहनलालजी के पिता विष्णुलालजी आगरे से मथुरा को चले आए और यहाँ सेठ लक्ष्मीचद के यहाँ पहिले दरजे के मुनीबो मे नौकर हुए।

पडित मोहनलालजी का जन्म सवत् १९०७ मि० अगहन बदी ३ मगलवार को हुआ था। सात वर्ष की अवस्था मे यज्ञोपवीत हो जाने पर इन्हे हिदी और सस्कृत की शिक्षा दी जाने लगी। इसके दो वर्ष बाद आप आगरे के सेट जास कालेज के स्कूल मे अँगरेजी पढने को बिठाए गए। इसके बाद जहाँ जहाँ इनके पिता की बदली होती गई वहाँ वहाँ आप उनके साथ रह कर बराबर अध्ययन करते रहे।

मोहनलालजी के पिता ने इन्हे पूर्ण-रूप से शिक्षा देने के अभि-

पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या।

प्राय से बनारस को अपनी बदली करवा ली और वे यहाँ नियतरूप से रहने लगे। तब आप भी बनारस मे आ कर क्वीस कालेज के एंट्रेस क्लास मे भर्ती हो गए, परन्तु कुछ उद्दड स्वभाव होने के कारण इनसे और इस स्कूल के हेडमास्टर पंडित मथुराप्रसाद मिश्र से न पटी। इसीलिये इन्होने जयनारायण कालेज मे अपना नाम लिखवाया परतु वहाँ अधिकतर लडके बगाली थे इसलिए इन्हे विवश हो कर दूसरी भाषा बँगला लेनी पडी। यथासाध्य चेष्टा करने पर भी जब आप दूसरी भाषा मे बार बार फेल हुए तब आपने स्कूल तो छोड़ दिया परतु खानगी तौर पर लिखने पढने का अभ्यास न छोडा।

मोहनलालजी के पिता महाजनी काम काज के बाद बाबू हरिश्चद्रजी के घर भी जाया आया करते थे। इसीसे इनका भी वहाँ जाना आना होने लगा और इन दोनो समवयस्क युवाओ मे थोडे ही दिनों मे गाढी मित्रता हो गई, बस इनकी दिन रात वही बैठक रहने लगी। बाबू साहिब के यहाँ जो विद्वान् पडित लोग आते और शास्त्रगर्भित बातो पर वाद विवाद करते उन्हे आप भी ध्यानपूर्वक सुनते और मनन करते। आप का कथन है कि हिदी भाषा के अद्वितीय पडित और तुलसीकृत रामायण के मर्मज्ञ पडित बेचनरामजी भी प्राय बाबू साहिब के यहाँ आते थे। उन्होने हम दोनो को हिदी भाषा के तत्त्व समझाए और इस ओर हमारे चित्त को आकर्षित किया। फिर क्या था, हम लोगो ने परस्पर इस बात की सौगद कर ली कि परस्पर हिदी भाषा के सिवाय दूसरी भाषा का व्यवहार कदापि न करेंगे। फारसी और उर्दू को जानते हुए भी हम लोगो ने उस ओर से अपना मन मोड लिया।

जब मोहनलालजी के पिता का देहांत होने लगा तो वे इन्हें अपने परममित्र मुमताजुद्दौला के नव्वाब सर फैज अलीखॉ के सपुर्द कर गए। उन्होने बड़ौदा कमिशन के समय इन्हे अपना कॉफीडेशल

क्लर्क नियत किया और राज-कार्य्य-सबंधी कामो की शिक्षा दी। सन् १८७७ मे उनके अपने पद पर से इस्तीफा दे देने पर इन्होने उदयपुर राज्य मे नौकरी कर ली और श्रीनाथद्वारा और कॉकरौली के महाराजो की नाबालिगी मे उन रियासतो का अच्छा प्रबध किया। इसके बाद इन्हे उदयपुर की सदर अदालत की दीवानी का काम मिला और फिर कुछ दिनो मे इन्हे स्टेट काउसिल के मेबर और सिक्रेटरी का पद प्राप्त हुआ। १३ वर्ष उदयपुर राज्य की सेवा करके इन्होने वहॉ से इस्तीफा दे दिया और प्रतापगढ राज्य के दीवान नियत हुए। यहॉ से पिशन लेकर आप मथुरा जी में आ बसे।

जिस समय मोहनलालजी बनारस मे थे उस समय परम प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता डाक्टर राजेद्रलाल मित्र अक्सर बाबू हरिश्चद्रजी के यहाँ आया करते थे। उन्होने इनकी रुचि देख कर इन्हे पुरातत्त्व की शिक्षा दी जिससे इनकी योग्यता और भी बढ गई। इस विषय मे ॲगरेज विद्वान् भी आप की प्रशसा करते है। इन्होने महारानी विक्टो-रिया की जुबिली के समय भारत सरकार मे १०००) रुपया जमा कर के यह प्रार्थना की थी कि इस धन से प्रतिवर्ष दो तमगे उन दो छात्रो को मिला करे जो कलकत्ता यूनिवरसिटी की परीक्षा मे सब से औवल आवे। इसे सरकार ने धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया। अब ये दोनो मेडल इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रति वर्ष दिए जाते हैं।

इन्होने हिदी मे १२ पुस्तके रची हैं। पृथ्वीराज रासो की सरक्षा की और उसका संपादन भी किया। हिदी के विद्वानो मे पुरातत्त्व की रुचि और उसमे दक्षता रखने वालो मे आप का स्थान उच्च था। आप का देहांत ४ दिसबर १९१२ को मथुरा जी मे हुआ।

लाला श्रीनिवासदास ।

(१५) लाला श्रीनिवासदास ।

लाला श्रीनिवासदास जाति के वैश्य थे। उनके पिता का नाम लाला मगलीलाल जी था। वे मथुरा के सुप्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचद जी के प्रधान मुनीब थे। कहने को तो वे मुनीब थे पर वास्तव मे वे सेठ जी के दीवान थे। वे दिल्ली की कोठी के कारिन्दे थे और वही रहते थे।

लाला श्रीनिवासदास का जन्म सवत् १९०८ सन् १८५१ ई० मे हुआ था। ये बाल्यावस्था ही से बडे शीलवान्, सदाचारी और चतुर थे। इन्होने आरभ मे हिंदी और फिर उर्दू, फारसी, सस्कृत और अँगरेजी आदि भाषाओं मे अभ्यास करके शीघ्र ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

लाला श्रीनिवासदास ने छोटी उम्र मे बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली थी। महाजनी कारोबार मे तो इन्होने ऐसी दक्षता प्राप्त कर ली थी कि केवल अठारह वर्ष की अवस्था मे दिल्ली की कोठी का सारा कारोबार हाथो हाथ सँभाल लिया। इनकी ऐसी योग्यता देख कर पंजाब प्रात की गवर्नमेंट ने इन्हे म्युनिसिपल कमिश्नर बनाया और आनरेरी मजिस्ट्रेट की पदवी प्रदान की। इनकी जैसी रीझ बूझ सरकार मे थी वैसे ही बिरादरी वाले और शहर के महाजन लोग भी इनको मानते थे।

लाला श्रीनिवासदास को दिल्ली की कोठी का कारोबार करने के अतिरिक्त इधर उधर दौरा कर के और और कोठियों की भी देख

भाल करनी पडती थी, इससे इन्हे अपनी बुद्धि को परिमार्जित करने का और भी अच्छा अवसर हाथ लगा। इन्हे मातृभाषा हिंदी से स्वाभाविक प्रेम था। आप जहाँ कहीं बाहर जाते और वहाँ कोई हिंदी का लेखक या रसिक होता तो उससे अवश्य ही मिलते। यदि इनके यहाँ कोई हिंदी का गुणग्राही आ जाता तो सब काम छोड कर उससे बडे प्रेम से मिलते और उसका अच्छा सत्कार करते थे।

एक बार आप पडित प्रतापनारायण मिश्र के यहाँ मिलने गए और बडी नम्रतापूर्वक इन्होने उन्हे एक मोहर नजर करनी चाही। इस पर पडित प्रतापनारायण बेतरह बिगडे और बोले, आप हमारे पास अपने धन की गरूरी बतलाने आए हो। इसके उत्तर मे इन्होने नम्रतापूर्वक हाथ जोड कर उत्तर दिया कि नहीं महाराज, मैं तो मातृभाषा के मदिर पर अक्षत चढाता हूँ।

लाला श्रीनिवासदास को हिंदी से बडा प्रेम था और इसकी सेवा करने का बड़ा उत्साह था परतु काम काज के झझट के कारण इन्हे अवकाश बहुत कम मिलता था। इसलिये इनके लिखे हुए तप्तासवरण, सयोगितास्वयवर, रणधीरप्रेममोहिनी और परीक्षागुरु ये ही चार ग्र थ हैं, पर फिर भी ये चारो ग्र थ एक से एक बढ कर हैं। परीक्षागुरु मे इन्होने जो एक साहूकार के पुत्र के जीवन का दृश्य खीचा है उसे देख कर स्पष्ट प्रगट होता है कि इन्हे सासारिक व्यवहारो का कैसा अच्छा अनुभव था।

खेद के साथ कहना पडता है कि लाला श्रीनिवासदास केवल ३६ वर्ष की अवस्था मे सवत् १९४४ (सन् १८८७ ई०) मे कालकवलित हुए। यदि ये कुछ दिन और रहते तो हिंदी भाषा की बहुत कुछ सेवा करते। इनका चरित्र और स्वभाव आदर्श मानने योग्य है।

बाबू कार्तिकप्रसाद ।

(१६) बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री।

बाबू कार्तिकप्रसाद के पितामह गोविदप्रसादजी तीर्थाटन की इच्छा से वृदावन मे आए और फिर वे वही रहने लगे। वे अरबी फारसी मे अच्छी योग्यता रखते थे और हकीमी विद्या मे भी निपुण थे। इसलिये भरतपुर के महाराज के कृपापात्र होकर उसी दरबार मे हकीम के पद पर नियत होकर रहने लगे। परतु सन् १८२८ मे जब भरतपुर अँगरेज सरकार ने विजय कर लिया तो वे कलकत्ते मे आकर रहने लगे। यहाँ उन पर सरकार की कृपा रही और वे २००) मासिक पाते रहे। इसी प्रकार उनके पुत्र बलदेवप्रसादजी भी हकीमी विद्या मे निपुण हुए और वे भी सरकार के कृपापात्र रहे।

बाबू कार्तिकप्रसाद का जन्म सवत् १९०८ मि० अगहन वदी ७ को कलकत्ते मे हुआ था। इनके पिता बलदेवप्रसादजी ने इन्हे यथासाध्य अच्छी शिक्षा देने का प्रबध किया था परतु सन् १८७० मे जब उनका देहात हो गया तो इनकी अवस्था केवल १७ वर्ष की थी। दुर्भाग्यवश इसी वर्ष इनकी माता का भी परलोकवास हो गया। इसी कारण सासारिक व्यवहारो का भार सिर पर आ पडने के कारण ये आगे शिक्षा न पा सके और न प्राप्त शिक्षा का उचित उपयोग कर सके। उस समय तक इन्होने अँगरेजी मे एट्रेस परीक्षा तक पढ लिया था और सस्कृत के अतिरिक्त वैद्यक विद्या मे भी कुछ दखल कर लिया था। बँगला भाषा मे भी इन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

परतु अपनी मातृभाषा हिंदी से इन्हे स्वाभाविक अनुराग था। सारसुधानिधि के सपादक पडित सदानदजी से हेल मेल होने के कारण इनका इस ओर और भी उत्साह बढा और उन्ही की सहायता से इन्होने १४ वर्ष की अवस्था मे "जन्मभूमि और अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति" विषय पर एक निबध हिंदी मे लिख कर सर्वसाधारण के समुख पढा। सन् १८७१ ई० मे इन्होने "प्रेम-विलासिनी" मासिक पत्रिका और "हिंदी-प्रकाश" साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करना आरभ किया। कलकत्ते मे हिंदी के ये पहिले समाचार पत्र थे। इन्होने हिंदी के "नदकोष" नामक पद्य कोष को अकारादि क्रम से लिख कर सम्पादित किया और सारस्वत के पूर्वार्द्ध का भाषानुवाद करके उसका "सारस्वतदीपिका" नाम रक्खा।

पिता का देहात होने के पश्चात् इन्होने कई एक व्यापार उठाए परतु सब मे घाटा हुआ। अत मे इन्होने एक बिसातखाने की दूकान खोली सो उसे एक कृतघ्न मित्र ने बिलकुल अपना लिया। इन्ही सब कारणो से उचाट चित्त होकर इन्होने कलकत्ता छोड कर काशी का रहना पसद किया। कलकत्ते से आकर इन्होने कुछ दिन लखनऊ के डाकविभाग मे काम किया और कुछ दिन अपने मामा वकील छन्नूलालजी की जमीदारी का भी प्रबध किया। परतु कुछ काल पश्चात् यह सब छोड कर इन्होने रीवॉ की यात्रा की। रीवाधिपति महाराज रघुराजसिहजी इनसे मिल कर अत्यत प्रसन्न हुए और उन्होने इन्हे कृपापूर्वक अपना मुसाहिब बना कर अपने पास रक्खा।

११ वर्ष रीवॉ मे रह कर आप पुन: काशी को चले आए। सन् १८८४ ई० मे बलिया जिले के बदोबस्त के मुहकमे मे हिंदी

जारी होने का प्रयत्न हो रहा था। अस्तु, यहाँ से बाबू हरिश्चंद्रजी ने आपको प्रतिनिधि बना कर हिंदी का पक्ष समर्थन करने को भेजा। वहाँ से लौटते समय आप काशी न आकर सीधे आसाम को चले गए और विसडगढ, कामरूप, सिलहट, कछार, मनीपूर आदि स्थानों मे होते हुए शिलॉग मे आए। यहाँ इन्होने पंजाबी शाल वग़ैरह की दूकान खोली, चदा करके जगन्नाथ का मदिर बनवाया और रथयात्रा का मेला स्थापित किया, और 'मित्रसमाज' नामक एक सभा स्थापित की। बबई मे जब गोरक्षा-मिमोरियल की बात चली थी तो आपने आसाम से दस हज़ार व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाए थे।

आसाम से लौट कर जब से आप काशी जी मे आए तब से फिर कहीं नहीं गए। केवल एक बार काश्मीर की यात्रा की थी। काशी मे रह कर भारतजीवन का सम्पादन और उत्तमोत्तम पुस्तके लिख कर हिंदी-साहित्य की सेवा करते रहे। आपने कोई २० पुस्तके लिखी जिनमे से कुछ तो बँगला के अनुवाद हैं। आप कुछ दिन तक काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के उपसभापति भी रहे थे और उसकी उन्नति मे सदा दत्तचित्त रहते थे। आपका देहात तारीख़ ९ जूलाई सन् १९०४ को काशी मे हुआ।

---

(१७) पंडित भीमसेन शर्म्मा ।
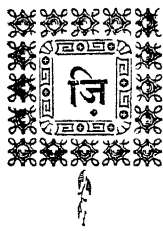
जि़ला फरु खाबाद मे मेरापुर नाम का एक गॉव था। उसी के समीप रामपुर एक बस्ती है। रामपुर किसी क्षत्रिय वश की राजधानी थी। मेरापुर मे उस राज-वश के पुरोहित धृतकौशिक गोत्री ब्राह्मण रहते थे। उनका आस्पद मिश्र था, कालवश उक्त राजधानी के नष्ट होने पर मेरापुर भी उजड गया।

उक्त मिश्र वश मे से एक पडित हरिराम शर्म्मा जिला एटा तह-सील अलीगज के लालपुर नाम के गाव मे आ बसे। उनसे छठी पीढो मे नेकराम शर्म्मा का जन्म हुआ।

हमारे चरित-नायक पडित भीमसेन शर्म्मा इन्हीं नेकरामजी के पुत्र हैं। इनका जन्म सवत् १९११ मे हुआ। ढाई वर्ष की अवस्था होने पर इनकी माता का परलोकवास हो गया, तब से ये पिता के पास रहने लगे और बोलने की शक्ति होते ही हिसाब सीखने लगे, क्योकि इनके पिता गणित-विद्या मे बडे निपुण थे।

उस समय बालको के पढने का कोई उचित प्रबध नही था पर इस ओर लोगो का ध्यान आकर्षित हो चुका था। इसलिये गॉव के सब लोगो ने मिल कर एक कायस्थ लाला को उर्दू पढाने पर रक्खा। गॉव के सब लडको के साथ पडित भीमसेन भी उर्दू पढने लगे। ये अपनी तीव्र बुद्धि से अपना पाठ बडी सावधानी से घोख लेते थे परतु लालाजी इनसे प्रसन्न होने के बदले अप्रसन्न थे। वे सोचते थे कि यदि इसी तरह सब लडके पढ गए तो हमारी जीविका

पंडित भीमसेन शर्मा ।

कैसे चलेगी। कुछ दिनो के बाद लालाजी चले गए और सब लडके अधकचरे रह गए परतु भीमसेनजी दूसरे गाँव मे जाकर पढ आते थे। इस तरह से पढने लिखने योग्य उर्दू की योग्यता प्राप्त कर लेने पर इन्होने हिदी का अध्ययन आरभ किया और इसके पीछे सस्कृत व्याकरण पढना आरभ किया।

१७ वर्ष की अवस्था तक इन्होने घर पर अध्ययन किया परतु सवत् १९२५—२६ मे जब स्वामी दयानदजी ने फर्रुखाबाद मे सस्कृत-पाठशाला स्थापित की तो ये वहाँ पढने चले गए और अष्टाध्यायी व्याकरण की श्रेणी मे भरती हुए। इन्होने दो वर्ष मे सपूर्ण अष्टाध्यायी पढ ली और इसके अनतर व्याकरण महाभाष्य, पिंगल-सूत्र, स्वरप्रकरण, चद्रालोककारिका, अलकार और माघ काव्य आदि ग्रथो को एक साथ पढा और एक वर्ष मे इन सब मे प्रवेश कर लिया। तदनतर २१ वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह हुआ और फिर ये काशी मे आकर दर्शन शास्त्र पढने लगे।

इस समय स्वामी दयानदजी भी काशी मे थे। पडित भीमसेन उन्हीके यहाँ लिखा पढी का काम करने लगे। उन्हीके साथ इन्होने दिल्लीदरबार देखा और दो वर्ष तक पजाब मे पर्य्यटन किया। फिर काशी मे रह कर ये दर्शन ग्रंथ पढने लगे। यहाँ बीमार पडने के कारण वे घर को चले गए और वहाँ से फिर स्वामीजी के साथ रहने लगे। सवत् १९४० मे जब स्वामी दयानंदजी का स्वर्गवास हो गया तब ये वैदिक यत्रालय प्रयाग मे सशोधक के कार्य पर नियत हुए। यहाँ रह कर इन्होने बहुत सी दर्शन और वैदिक पुस्तको का भाषानुवाद किया और कई पुस्तके स्वतन्त्र रची। सवत् १९४२ मे इन्होने आर्य्यसिद्धात नाम का एक मासिक पत्र निकाला और उपनिषदादि कई पुस्तको पर भाष्य लिखे। कुछ दिनों के बाद

उक्त प्रेस के मैनेजर से बिगाड हो जाने के कारण इन्होने वह नौकरी छोड दी और अपना घर का प्रेस कर लिया।

वैदिक यन्त्रालय से सबध छोडने के दस बारह वर्ष के बाद कलकत्ते के सेठ माधवप्रसाद खेमका इनके पास गए और इनसे कहा कि हम यज्ञ किया चाहते हैं उसे आप वेद की विधि से कराइए। इन्होने सेठजी के अनुरोध से जब वेद मे यज्ञ की विधि देखी तो उसे प्राय आर्य्य-समाज के सिद्धात के बहुत प्रतिकूल पाया। इन्होने सेठजी से कहा। सेठजी ने कहा कि आर्य्यसमाज से कुछ प्रयोजन नही है हम वेद-विधि से यज्ञ किया चाहते हैं। अस्तु, इन्होने उसी समय से आर्य्यसमाज से अपना संबध छोड दिया और वेद-विधि से यज्ञ कराया। इस पर आर्य्यसमाजी लोग इनसे बहुत कुछ बिगडे और अखबारो मे इनकी बडी निंदा छापी। इन्होने उसका प्रतिवाद किया और 'आर्य्यसमाज' को वेद-विरुद्ध धर्म सिद्ध किया। इन्होने आगरे के आर्य्यसमाज से श्राद्ध विषय पर शास्त्रार्थ भी किया। इसीके कुछ दिनो बाद ब्राह्मणसर्वस्व नामक मासिक पत्र निकाला। यह पत्र अब भी चलता है।

इस समय पडित भीमसेनजी इटावा नगर मे बैठे भगवद्भजन मे समय बिताते हैं और विद्या-व्यसन मे रत रहते हैं। एक बार जब आर्य्यसमाज मे मासाहारी दल की प्रबलता हुई तो इन्हे जोधपुर मे बुला कर लोगो ने १००) रु० मासिक पर उपदेशक नियत कर के मांस खाने को वेद से सिद्ध कराना चाहा था पर इन्होने इसे स्वीकार नही किया। सन् १९१२ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे आप "वेद" के अध्यापक नियत हुए हैं और अब तक उस काम मे लगे हुए हैं।
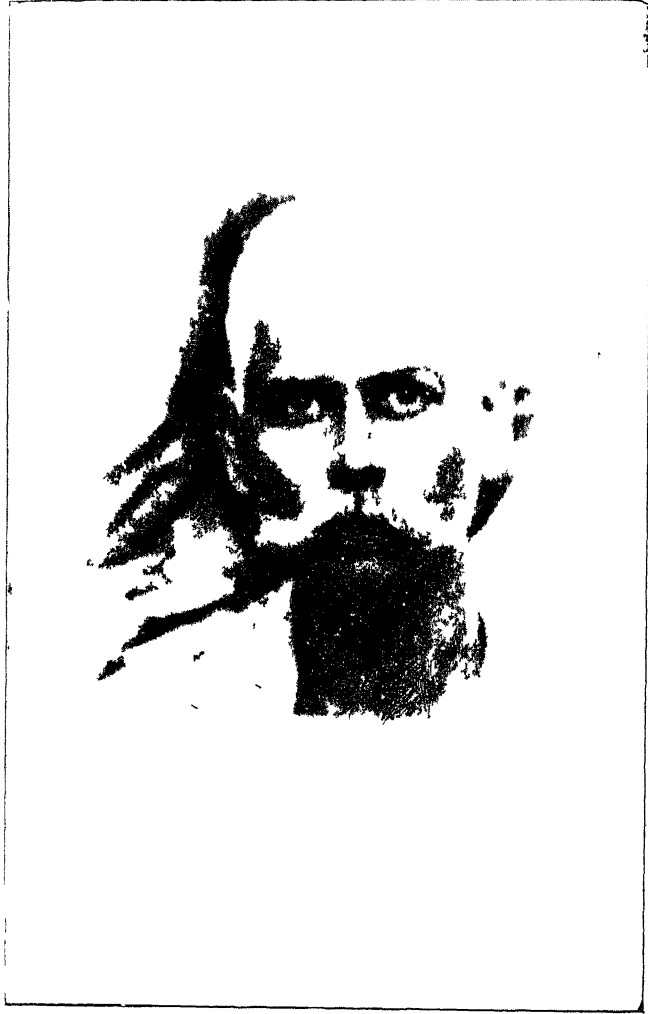
पंडित केशवराम भट्ट।

(१८) पंडित केशवराम भट्ट।

पंडित केशवराम भट्ट महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज बहुत दिनों से बिहार मे रहने लगे थे। यद्यपि इनका आस्पद 'पाठक' था परतु इधर दक्षिण के ब्राह्मण मात्र को लोग भट्ट कहते हैं इसीसे यह उनकी कुलपरम्परा की उपाधि हो गई। उनके पिता एक धनवान् और प्रतिष्ठित पुरुष थे, वे महाजनी का काम करते थे।

पडित केशवराम का जन्म आश्विनकृष्ण पचमी सवत् १९११ मे हुआ था। इनके जन्म होने के छ महीने पहिले ही इनके पिता का परलोकवास हो गया था। परतु इनके बडे भाई पडित मदनमोहन भट्ट होशियार थे। उन्होने घर का काम काज सँभाला और इनकी शिक्षा का प्रबध किया। इनकी माता स्वय शिक्षिता और बुद्धिमती थी, अतएव आरभ मे उन्होने इनको उचित शिक्षा दी। कुछ बडे होने पर इन्होने महाजनी और हिंदी पढी और फिर उर्दू और फ़ारसी मे अच्छी योग्यता प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने अँगरेजी पढना आरभ किया। सन् १८७२ मे इन्होने एँट्रेंस परीक्षा पास की और फिर एफ़० ए० मे भी अभ्यास किया परतु परीक्षा मे उत्तीर्ण न हो सके इसलिए इन्होने पढना ही छोड दिया।

पंडित केशवराम जी ने सन् १८७४ मे "बिहारबधु" प्रेस खोला और उसीके साथ बिहारबधु समाचारपत्र को प्रकाशित करना आरभ किया। आप किसी कार्यविशेष से कुछ दिन के लिये

कलकत्ते चले गए थे। इसलिये इनके सहपाठी मु शी हसनअली बिहारबधु के सपादक हुए और ये उसकी केवल लेखो से सहायता करते रहे। इसी समय बिहार के स्कूलो के सर्किल इन्सपेक्टर की आज्ञानुसार बोधोदय नामक एक बगला पुस्तक का इन्होने भाषानुवाद किया और उसका नाम विद्या की नीव रक्खा। यह पुस्तक बहुत दिनो तक विहार के स्कूलो मे जारी रही।

सन् १८७५ ई० मे 'बिहारबधु' का सम्पादन इन्होने स्वय अपने हाथ मे लिया और इसी वर्ष "बिहारउपकारक सभा" स्थापित की।

इन दिनो बिहार मे तथा अन्यत्र भी नाटको की अच्छी चर्चा थी। अस्तु कई एक अतरग मित्रो की प्रेरणा से आपने "शमशाद सौसन" नाम का पहला नाटक लिखा। इसका अभिनय भी हुआ जिससे दर्शकमडली अत्यन्त प्रसन्न हुई और इनका भी उत्साह बढा। अस्तु इन्होने दूसरा नाटक "सज्जादसबुल" लिखा।

सन् १८७७ ई० मे आप दरभगा के स्कूलों के आफिशियेटिग डिप्टी इन्सपेक्टर नियत हुए, फिर अगले दिसबर मे शाहाबाद जिले के डिप्टी इ सपेक्टर हुए। इस पद पर इन्होने बडी योग्यता और मुस्तैदी से काम किया और सन् १८७९ ई० मे आप नार्मल स्कूल के आफिशियेटिग हेड मास्टर हुए।

कुछ दिनों के पश्चात् आप स्थानीय बिहार हाई इगलिश स्कूल के हेड पडित के पद पर नियत हुए और १३ वर्ष तक अर्थात् अपने अंतिम समय तक उसी पद पर काम करते रहे।

पडित केशवराम भट्ट हिदी के अच्छे लेखको मे से थे। यद्यपि इन्होने पुस्तके बहुत नही लिखी हैं, पर जो लिखी हैं सब उपयोगी हैं। आप की लिखी पुस्तके ये हैं—

(१) विद्या की नीव (२) भारत-वर्ष का इतिहास बँगला भाषा से अनुवादित (३) शमशाद सौसन नाटक (४) सज्जाद सवुल नाटक (५) हिंदी का व्याकरण (६) रासेलस (अनुवाद)।

इनके बडे भाई पडित मदनमोहन भट्ट भी अच्छे लेखक थे, उन्होने हिंदी महाभारत लिखा था और इसके सिवाय कई छोटी छोटी पुस्तकें भी लिखी थी जिन सब मे से लोकनीति एक प्रशसनीय पुस्तक है।

पडित केशवराम भट्ट एक सुचरित्र पुरुष थे। ये बडे शुद्धचित्त, शांतस्वभाव, स्पष्टवक्ता, मिलनसार और निरभिमानी थे। इनका देहात हुए अभी थोडे ही वर्ष हुए है।

---

(१६) उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी ।

पंडित बदरीनारायण चौधरी भारद्वाज गोत्र के सरयूपारीण ब्राह्मण खोरिया उपाध्याय हैं। इनके दादा पडित शीतलप्रसाद उपाध्याय मिर्जापुर के एक प्रतिष्ठित रईस, महाजन, व्यापारी, और जमीदार थे। इन्होने अपने ही बाहुबल से बहुत कुछ धन, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनके एकमात्र पुत्र पंडित गुरुचरणलाल उपाध्याय हुए जो अपने पैत्रिक तथा सासारिक कार्यों का भली भाँति सपादन करते हुए ब्राह्मण-गुणो मे आदर्श हुए। ये अब तक वर्तमान हैं। इन्होने बहुत कुछ द्रव्य व्यय करके कई संस्कृत-पाठशालाएँ खोली हैं जिनमे विद्यार्थियो को भोजन आच्छादन आदि का भी उपयुक्त प्रबध है। अब ये महाशय त्रिवेणी तट पर भूसी के निकट वाले अपने ग्राम मे रह कर योग और ज्ञान के अर्जन मे अपना समय व्यतीत करते है।

इनके ज्येष्ठ पुत्र हमारे चरित-नायक पडित बदरीनारायण चौधरी का जन्म संवत् १९१२ भाद्रपद कृष्ण ६ को हुआ। प्राय पाँच वर्ष की अवस्था के पूर्व इनकी सुशीला और शिक्षिता माता ने स्वय इन्हे हिंदी पढाना आरभ कर दिया था तो भी इन्हे गुरु जी के यहाँ कुछ दिनो तक हिंदी पढनी पडी थी। सवत् १९१७ मे इन्हे फारसी की शिक्षा दी जाने लगी। फिर अँगरेजी प्रारभ कराई गई, पर कई कारणों से पढाई का सिलसिला ठीक न चल सका। कुछ दिनों तक गोंडे मे रह कर इन्होने विद्याध्ययन किया। यहाँ अवधेश महाराज सर प्रताप-नारायणसिह, लाल त्रिलोकीनाथसिह और राजा उदयनारायण-

उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी।

सिह आदि का साथ हो जाने से इन्हे अश्वारोहण, गजसंचालन, लक्ष्यवेध और मृगया से अधिक अनुराग हो गया और यही मानों इनके बाल्यावस्था मे क्रीड़ा की सामग्री थी। ये निज सहचरो के संग प्राय घुडदौड करते और शिकार खेलते थे।

सवत् १९२४ मे ये वहाँ से फैजाबाद चले आए और वहाँ के जिला स्कूल मे पढने लगे। उसी वर्ष इनका विवाह भी बडी धूम धाम से जिला जौनपुर के समसा ग्राम मे हुआ। सवत् १९२५ मे इनके पितामह का स्वर्गवास होने से इन्हे मिर्जापुर लौट कर पुन जिला स्कूल मे पढना पडा और सवत् १९२७ के आरभ मे इन्हे स्कूल का पढना छोड स्वतत्र मास्टर से पढने और घर के कार्यों की देख भाल मे लगना पडा। फिर इनके पिता ने इन्हे सस्कृत पढाना आरभ किया क्योकि वे हिदी, फारसी के अतिरिक्त सस्कृत मे अच्छे पडित और उसके विशेष अनुरागी थे। उन्हे प्राय अन्य नगरो और विदेशों मे भ्रमण करना पडता था, इसीसे अपने पारिषद् वर्गों मे से पडित रामानद पाठक को जो एक अच्छे विद्वान् थे, इन्हे पढाने के लिए नियुक्त किया। इन पंडित जी के कारण इन्हे कविता से अनुराग हुआ, और यही इनके मानो कविता के भी गुरु थे। किंतु घर के कामों मे पडने से इनकी प्रकृति मे भी परिवर्तन हो चला। क्रमश. आनद-विनोद और मनबहलाव की सामग्रियाँ प्रस्तुत होने लगी पर साथ ही साहित्य की चर्चा भी रही। सगीत पर इनका अनुराग सब से अधिक प्रबल हुआ और ताल सुर की परख बेहद बढ चली। निदान अब चित्त दूसरी ही ओर लग चला तथा भाँति भाँति के कार्य्यों के संग दूसरे दूसरे नगरों के परिभ्रमण मे भी न्यूनता न रही। सवत् १९२८ मे ये प्रथम वार कलकत्ते गए और वहाँ से लौटने पर बरसो बीमार पडे रहे, जिसमे इन्हे साहित्य-संबंधी विशेषत: व्रजभाषा के बहुत से प्राचीन ग्रंथो को देखने और सुनने

का अवसर मिला। सवत् १९२९ मे इनसे पडित इद्रनारायण शगलू से मित्रता हुई जो बहुत ही कुशाग्रबुद्धि, कार्य्यपटु, नवीन विचार के तथा देशहित करनेवाले मनुष्यो मे से थे। इनके द्वारा इन्हे सभा समाज और समाचारपत्रो से अनुराग तथा उर्दू-शायरी मे उत्साह बढा। इन्ही के द्वारा भारतेदु बाबू हरिश्चद्र जी से चौधरी साहिब की जान पहिचान हुई जो क्रमश मैत्री मे परिणत हो गई। यह मैत्री उत्तरोत्तर दृढ होती गई और अत तक उसका पूरा निर्वाह हुआ। सवत् १९३० मे इन्होने "सद्धर्मसभा" और १९३१ मे "रसिकसमाज" तथा यो ही क्रमश और कई सभाए स्थापित की। १९३२ मे इन्होने कई कविताए लिखी और १९३३ मे इनके कई लेख कविवचनसुधा मे छपे। बस अब तो उत्तरोत्तर कई कविताए लिखी गई। सवत् १९३८ मे आनदकादबिनी की प्रथम माला प्रकाशित हुई और १९४९ से "नागरीनीरद" साप्ताहिक समाचारपत्र का सम्पादन आरभ हुआ। इन दोनो पत्र और पत्रिकाओ मे अनेक गद्य पद्यात्मक लेख ग्र थ इनके छपे जो कि अद्यापि स्वतत्र रूप से प्रकाशित न हो सके। इनकी अनेक कविताए और सद्ग्रन्थ वर यो कहना चाहिए कि इनकी कविता का उत्तमाश अभी तक इन पत्र और पत्रिकाओ तक भी न पहुँच सका। इनकी केवल वही कविता प्रकाशित हो सकी जो समय के अनुरोध से अत्यावश्यक जान पड़ी और चट पट निकल गई जैसे "भारत-सौभाग्य नाटक", "हार्दिक हर्षादर्श" "भारतबधाई", "आर्य्या-भिनदन" इत्यादि अथवा जो बहुत आग्रह की माँग के कारण लिखी गई यथा "वर्षाविदु" वा "कजलीकादबिनी"। इसका कारण यह था कि इनकी कविता का उद्देश्य प्राय निज मन का प्रसाद मात्र था इसी से ये उसके प्रचार वा प्रकाशित करने के विशेष प्रयासी न हुए और न इसके द्वारा धन, मान या ख्याति के अभिलाषी हुए। इसीसे स्वास्थ्य

तथा प्रसन्नता के समय जब जिस विषय पर चित्त आया वह लिखा और जहाँ से उचटा छोड दिया। लिखने पढने के विषय मे बारबार इनका बढता हुआ उत्साह घर के लोगो ने ऐसा भग किया कि ये प्राय इस अंश मे उत्साह-हीन से हो गये। निस्संदेह इनकी निरन्तर पारिवारिक परतत्रता इनके विद्या-वैभव की बडी बाधक हुई। तिस पर भी जो कुछ अब तक प्रकाशित हुआ है वह इनकी कुशाग्रबुद्धि और कविताशक्ति का पूर्ण सूचक है। कविता मे ये अपना उपनाम प्रेमघन (अभ्र) रखते हैं। सन् १६१२ के अत मे कलकत्ते मे हिदीसाहित्य-सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन हुआ था। आपको उसके सभापति होने का गौरव प्राप्त हुआ था।

---

(२०) पंडित प्रतापनारायण मिश्र ।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र कात्यायन गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण बैजेगाव के मिश्र थे। यह बैजेगाव अवध के जिले मे शहर उन्नाव से थोडी दूर पर है। पडित प्रतापनारायण के पिता का नाम सकटाप्रसाद, पितामह का रामदयाल और प्रपितामह का रामसेवक था। इनके पिता सकटाप्रसाद १४ वर्ष की उम्र मे कानपुर मे आबसे थे। वे एक अच्छे ज्योतिषी थे। इसलिए धीरे धीरे उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी होती गई और कुछ दिनो मे उन्होने रियासत भी पैदा कर ली।

पडित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ९ सवत् १९१३ (सन् १८५६ ई०) मे हुआ था। इनके पिता ने इन्हे अपनी तरह ज्योतिर्विद् बनाना चाहा परतु इनकी उस ओर रुचि न थी, इसलिए उन्होने लाचार होकर इन्हे अँगरेजी मदरसे मे पढने बैठाया। पर थोडे ही दिनो मे इन्होने वह मदरसा भी छोड दिया और एक पादरियो के मदरसे (मिशन स्कूल) मे भरती हुए। परतु इनका पढने लिखने मे मन नही लगता था। इसलिए अगरेजी भाषा मे कुछ थोडा सा ज्ञान प्राप्त करके सन् १८७५ ई० के लगभग इन्होने वह स्कूल भी छोड़ दिया। इसके कुछ दिनो बाद इनके पिता का देहात हो गया और उसी दिन से इनके विद्याध्ययन की भी इतिश्री हुई। अँगरेजी के साथ मे इनकी दूसरी भाषा हिदी थी, पर इन्होने उर्दू मे भी अच्छा अभ्यास कर लिया था, साथ ही इसके कुछ कुछ संस्कृत और फ़ारसी भी जानते थे।
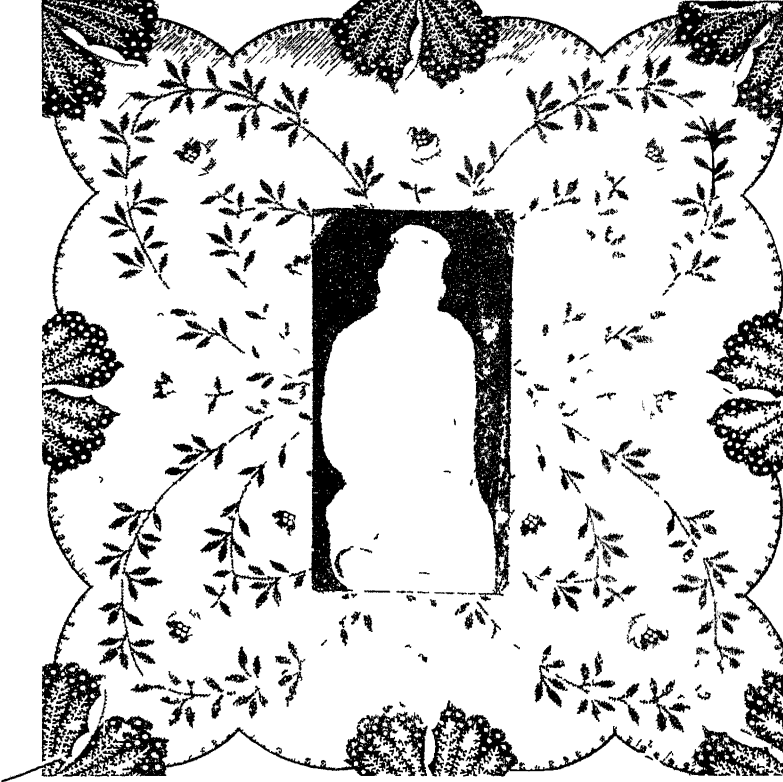
पंडित प्रतापनारायण मिश्र ।

पडित प्रतापनारायण मिश्र के हृदय मे काव्य का बीज उसी समय मे जम चुका था जब कि ये छात्रावस्था मे थे। उस समय बाबू हरिश्चंद्र का कवि-वचनसुधा खूब ज़ोर पर था। उसके गद्य पद्य लेख बड़े ही प्रभावोत्पादक और मनोरजक होते थे। पंडित प्रतापनारायण उसे बडे प्रेम से पढते थे। उसी समय कानपुर मे लावनी की बडी चर्चा थी। प्रसिद्ध लावनीबाज बनारसीदास वहाँ महीनों रहते थे। कानपुर मे उसी समय पडित लालताप्रसाद त्रिवेदी उपनाम ललित एक अच्छे कवि हो गये हैं। अस्तु, पडित प्रतापनारायण मिश्र को लावनी सुनने का चस्का लग गया। जहा लावनी का दगल होता वहाँ ये अवश्य जाते और समय समय पर "ललित कवि" के पास भी आते जाते। परिणाम यह हुआ कि भृगी के कीट की तरह उक्त कवि महाशय और लावनी बाजो की आशु कविता सुनते सुनते ये स्वयं एक अच्छे कवि हो गए। इन्होने ललित कवि से छद शास्त्र के नियम भी पढे और उन्हींको अपना गुरु मान कर कविता करने लगे।

कहा जा चुका है कि हिदी अखबार पढने का शौक़ इन्हे लडकपन से ही लग गया था और यही कारण है कि ये केवल समस्यापूर्ति करने वाले कवि न होकर एक सच्चे साहित्य-सेवी हुए। अपने दो एक मित्रो की सहायता से इन्होने १५ मार्च १८८३ से "ब्राह्मण" नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। ब्राह्मण के लेख प्राय हास्यरसमय व्यग्यपूर्ण परतु शिक्षाप्रद होते थे। इनकी हिदी ख़ूब महाविरेदार होती थी। ये अपने लेखो मे कहावते और चलतू चुटकलो का प्रयोग अधिक करते थे, इसीसे इनके मिसरे चुटीले होते थे, ये फारसी और सस्कृत मे भी कविता करते थे और वह कविता भी इनकी ऐसी ही सरल रसीली और प्रभावोत्पादक होती थी जैसी कि हिदी की।

सन् १८८६ ई० मे पंडित प्रतापनारायण कालाकाँकर गए और वहाँ "हिंदी हिंदोस्थान" के सहकारी सपादक नियत हुए, परतु स्वच्छद स्वभाव होने के कारण वहाँ ये बहुत दिनो तक न रह सके। मिस्टर ब्रैडला के विलायत से हिंदुस्तान मे आने पर इन्होने ब्रैडला-स्वागत-शीर्षक एक कविता रची थी। उसकी बडी तारीफ हुई। यहाँ क्या विलायत तक मे इनका नाम हो गया। वे हिंदी भाषा तथा देवनागरी-लिपि के बडे पक्षपाती थे। यदि इसके विरुद्ध कोई जरा भी चूँ करता तो आप उसके विपक्ष मे ब्राह्मण के कालम के कालम लिख मारते थे। आप बाबू हरिश्चद्र जी के बडे भक्त थे। इन्होने कुल १२ पुस्तको का भाषानुवाद किया और २० पुस्तके लिखी। इनकी अनुवाद की या लिखी हुई सब पुस्तके प्राय मनोरजक और शिक्षापूर्ण हैं। पडित प्रतापनारायण का रग गोरा और शरीर दुबला था। इनकी रहन सहन साधारण थी पर वे स्वभाव के स्वच्छद असहनशील और अपने मन के मौजी पुरुष थे। चिट्ठियो के उत्तर देने मे आलसी थे। शरीर से प्राय रोगी रहा करते थे। इन्हे नाट्य-कौशल से विशेष प्रेम था और ये स्वयं उसमे निपुण थे। इनके सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विचार स्वतत्र थे। और ये कांग्रेस को अच्छा समझते थे। मिती आषाढ़ शुदि ४ सवत् १९५१ को इनकी मृत्यु हुई।

डाक्टर सर जी ए ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० ।

(२१) डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० ।

डाक्टर ग्रियर्सन के० सी० आई० ई० आयरलेड के डबलिन परगने मे राथफर्न हम हाउस नामक घराने के नायक श्रीयुत जार्ज अब्रहम ग्रियर्सन के पुत्र हैं। आपका जन्म ता० ७ जनवरी सन् १८५७ ई० मे हुआ था। पहिले तो सुयोग्य और विद्वान् शिक्षको द्वारा इनको घर पर ही उचित शिक्षा दी गई पर जब १७ वर्ष की अवस्था हो गई तब उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप डबलिन नगर के ट्रिनिटी कालेज मे बैठाए गए। यहाँ से इन्होने बी० ए० पास किया, फिर राबर्ट एटकिसन से सस्कृत सीखी और मीर औलादअली के पास हिदुस्तानी भाषा पढने लगे। सस्कृत और हिदुस्तानी भाषा मे इन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त की और उसके लिये युनिवर्सिटी से पुरस्कार पाया।

सन् १८७१ मे आपने हिदुस्तान की सिविल-सर्विस परीक्षा पास की और दो वर्ष बाद हिदुस्तान मे आकर बगाल के जैसोर स्थान मे नियत हुए परतु शीघ्रही आपकी बदली अकाल के मुहकमे मे हो गई और आप विहार प्रात की दुर्भिक्ष-पीडित प्रजा की प्राणरक्षा के लिये भेजे गए। यहाँ आकर जब आपने देखा कि तिरहुत प्रांत के लोग तिरहुती भाषा के सिवाय दूसरी बोली जानते ही नही तब इनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि विलायत से जो केवल हिंदी और बंगला मे परीक्षा पास करके इस सुविस्तृत देश का शासन करने आते हैं वे प्रजा का दु ख सुख कदापि नही समझ सकते, इसलिये इस भाषा का व्याकरण और कोष तैयार होना अत्यत आवश्यक है।

अकाल शात होने पर इन्होने हबडा, मुर्शिदाबाद, रंगपुर आदि कई जिलो मे बडी योग्यता से काम किया। इसी समय आप बगाल एशियाटिक-सोसायटी मे सम्मिलित हुए और इन्होने रगपुर की विचित्र भाषा का व्याकरण बनाया। उसके नमूने भी प्रकाशित किए। सन् १८७७ मे आप दर्भगा के मधुवनी स्थान मे सबडिविजनल आफिसर होकर आए। यहाँ आप तीन वर्ष रहे और इसी अतर मे आपने कई एक देशी पडितो की सहायता से मिथिला भाषा का एक सागोपांग व्याकरण बना डाला। यहाँ पर जो आस पास के पडित या भजनी लोग आपसे मिलने आते उन्हे आप २) रु० और धोती जोडा बिदाई मे देते थे।

शरीर की अस्वस्थता के कारण आप सन् १८८० मे विलायत चले गए परतु स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर व्याह करके पत्नी सहित उसी साल फिर वापस चले आए। इस बार सरकार ने इन्हे कैथी भाषा के टाइप ढलवाने पर नियत किया। इस कार्य मे आपने बडी योग्यता दिखलाई। कैथी भाषा के अत्तर जो महाजनी की भाँति थे उन्हे सर्व-गुण-आगरी नागरी की नाई सर्वांग सु दर बना दिया। इसके बाद आप पटना के ज्वाइँट मजिस्ट्रेट नियत हुए। यहाँ रहकर आपने बिहारी-कृषक-जीवन नाम की एक पुस्तक रची। और विहारी की बोलियो का एक व्याकरण भी लिखा। यह सात भागो मे है। इसे बगाल गवर्नमेंट ने प्रकाशित कराया है। इस रचना से आपका बडा नाम हुआ।

सन् १८८५ मे आप छुट्टी लेकर जर्मनी चले गए। यहाँ आप कई बडी बड़ी सभाओ मे सम्मिलित हुए और आपने भारतवर्षीय साहित्य की अनोखी बातो पर एक निबध पढा। सन् १८८६ ई० मे आष्ट्रिया मे पूर्वी भाषाओ के संबंध मे एक सभा होने वाली थी।

अस्तु, आप भारत सरकार के प्रतिनिधि होकर उसमे भी सम्मिलित हुए। सन् १८८७ मे छुट्टी से लौट आने पर आप गया जिले के कले-क्टर और मजिस्ट्रेट नियत हुए। यहाँ भी आपने गया जिले का संक्षिप्त विवरण लिख डाला । इसी समय आपने हार्नली साहिब के साथ विहारी भाषा का कोश बनाना आरभ किया था परतु यह पूरा न हो सका। आपने पियदसी अर्थात् अशोक के शिला-लेखो पर एक निबध भी लिखा था ।

सन् १८९२ मे आपने आप ही अपनी बदली गया से हबडे को करा ली और वहाँ सन् १८९६ तक रहे। वहाँ पर आपने बिहारी-सतसई, पद्मावती, भाषाभूषण और तुलसीकृत रामायण आदि हिंदी-साहित्य की पुस्तकों का सम्पादन या भाषानुवाद किया और पडित बालमुकुद काश्मीरी की सहायता से सरकार के लिये भारत की भाषाओ पर एक निबंध लिखा । सन् १८९६ मे आप बिहार मे अफीमविभाग के एजेट नियत हुए और सन् १८९८ ई० मे भाषा-संबधी जाँच के काम पर नियत होकर शिमला गए और कुछ काल पीछे वहाँ से सीधे विलायत को चले गए। तब से अब तक आप वही हैं। सिविल सर्विस से आपने इस्तीफा दे दिया है पर अभी आप भाषा-सबधी खोज का काम कर रहे हैं।

डाकृर साहेब बडे ही सज्जन और सच्चरित्र पुरुष हैं। आपकी विद्वत्ता पर रीझ कर अनेक सभाओ ने आपको सम्मानित किया है और भारत गवर्नमेट ने भी के० सी० आई० ई० की पदवी से भूषित किया है। आपका हिंदी से बडा प्रेम है और उसकी सहायता मे आप सदा तत्पर रहते हैं।

---

(२२) ठाकुर जगमोहनसिंह ।

ठाकुर जगमोहनसिह के पूर्वजो का सबध जयपुर राजघराने से था। ये लोग इक्ष्वाकुवशीय जोगावत कछवाहे राजपूत है। आमेर के राजा कु तल देव के मँझले भाई आनलसिह के पाँच पुत्र हुए। इनके पुत्र बालोजी गाजी के थाण मे रहते थे। बालोजी के पुत्र खडेराय के आठ पुत्र हुए जिनमे जेष्ठ पुत्र भीमसिह आपस की अनबन के कारण घर छोड पन्ना मे आ बसे। इनके पुत्र वेणीसिह काल पाकर पन्ना के राजमत्री नियत हुए। एक युद्ध मे ये मारे गए। तब पन्नानरेश ने इनके पुत्र गजसिह को "राजधरबहादुर" की पदवी दी और मैहर का इलाका पुरस्कार मे रहने के लिये दिया। राजकाज मे फँसे रहने के कारण इन्होने अपने मँझले भाई ठाकुर दुर्जनसिह को मैहर रियासत का सब प्रबध सौंप दिया। बडे भाई के मरने पर ठाकुर दुर्जनसिह रियासत के मालिक हुए। इनके दो पुत्र थे। एक विष्णुसिह और दूसरे प्रयागदाससिह। भाइयो मे अनबन होने पर राज्य का बटवारा हो गया। विष्णुसिह मैहर मे रहे और प्रयागदाससिह ने दक्षिण भाग मे विजयराघवगढ बसा कर उसे अपनी राजधानी नियत किया। इनके पुत्र ठाकुर सरयूसिह जी हुए। जब पिता मरे तो इनकी अवस्था ५ बरस की थी। अतएव राज्य का प्रबध गवर्नमेंट ने अपने हाथ मे ले लिया। इसके १२ वर्ष पीछे सन् ५७ का बलवा हुआ। इस समय ठाकुर सरयूसिह १७ वर्ष के थे। कुछ लोगो के बहकाने मे आकर ये ब्रिटिश गवर्नमेंट के विरुद्ध खडे हो गए। परिणाम यह हुआ कि राज्य जब्त हो गया। इस समय इनके पुत्र ठाकुर जगमोहनसिह की अवस्था केवल छ.

ठाकुर जगमोहनसिंह ।

महीने की थी। (जन्म स० १-६१४ श्रावण शुक्ला १४) सन् १८६६ मे ठाकुर जगमोहनसिंह बनारस मे पढने के लिये भेजे गए। यहाँ इन्होने अँगरेजी, सस्कृत, हिंदी, बँगला, उर्दू भाषाए सीखी और उनमे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। १६ वर्ष की अवस्था मे इन्होने कालिदास के कई छोटे छोटे काव्यो का हिंदी छदोबद्ध अनुवाद किया। काशी मे इनसे भारतेदु हरिश्चद्र जी से बहुत स्नेह हो गया। इनका समय यहाँ पढने और सत्सग मे बीतता था। यहाँ से पढ़ कर सन् १८८० ई० मे ये धमतरी (रायगढ म० प्र०) मे तहसीलदार नियत हुए और दो ही वर्ष मे अपनी योग्यता के कारण ये एक्स्ट्रा असिस्टेट कमिश्नर हो गए। विद्या का इन्हे पूरा व्यसन था। सरकारी काम करने के अनतर जो समय बचता उसे ये लिखने पढने मे बिताते। इसी अवस्था मे श्यामास्वप्न आदि ग्रथ लिखे गए। इसी सेवा-वृत्ति मे इन्हे प्रमेह रोग हो गया। डाक्टरो ने जलवायु बदलने का परामर्श दिया। निदान छ महीनो तक ये भिन्न भिन्न स्थानो मे घूमते रहे। रोग कुछ कम हुआ पर जड से न गया। परिभ्रमण के अनतर घर लौटने पर कूचविहार स्टेट कॉउसिल के ये मत्री नियत हुए। महाराज कूचविहार काशी मे इनके सहपाठी थे। दो वर्ष तक इन्होने यहाँ बडी योग्यता से कार्य्य किया पर रोग ने यहाँ भी पीछा न छोडा। अत मे हार कर नौकरी छोड अपने देश को लौटना पडा। अनेक उद्योग किए गए पर रोग अच्छा न हुआ। सन् १८९९ के मार्च महीने मे एक पुत्र और एक कन्या छोड आप परधामगामी हुए।

इनके बनाए ग्रथ ये हैं—श्यामास्वप्न, श्यामासरोजनी, प्रेमसम्पत्तिलता, मेघदूत, ऋतुसहार, कुमारसम्भव, प्रेमहजारा, सज्जनाष्टक, प्रलय, ज्ञानप्रदीपिका, सांख्य (कपिल) सूत्रो की टीका,

वेदात सूत्रो (बादरायण) पर टिप्पणी, हसदूत, बानीवार्ड विलाप ।
इनमे से कुछ ग्र थ अमुद्रित और कुछ अपूर्ण हैं ।

ठाकुर साहिब की संस्कृत और भाषा-योग्यता बहुत बढी चढी थी । जिन्होने इनका श्यामास्वप्न या मेघदूत पढा होगा उन्हे इसका परिचय मिल गया होगा । इनका स्नेह अनेक अच्छे अच्छे राजा महाराजो से था । इनका स्वभाव उदार, गुणग्राही और मिलनसार था ।

लाला सीताराम, बी० ए० ।

(२३) लाला सीताराम, बी० ए० ।

सीताराम जाति के श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ हैं और इनके वश के लोग पहिले जौनपुर मे रहते थे, पर इनके पिता प्रसिद्ध बाबा रघुनाथदास के शिष्य हो गए थे अतएव वे जौनपुर छोड अयोध्या मे आ बसे। यही २० जनवरी सन् १८५८ को इनका जन्म हुआ। इनका विद्यारम्भ बाबा रघुनाथ दास ही ने कराया था, पर इसके पीछे एक मौलवी साहिब उर्दू फारसी पढाने के लिये नियत हुए। सौभाग्यवश उक्त अध्यापक कुछ हिदी भी जानते थे अतएव लाला सीताराम ने उर्दू के साथ कुछ हिदी भी पढी पर इनके पिता वैष्णव थे और बाबा रघुनाथदास के शिष्य थे अतएव उन्हे धर्म-सबधी भाषा-ग्र थो से बडा अनुराग था। लाला सीताराम बालपन मे अपने पिता के ग्र थो को प्राय पढा करते। इसीसे उन्हे हिदी का ज्ञान और उससे प्रेम उत्पन्न हो गया।

इसके कुछ काल अनतर इन्होने अँगरेजी पढना आरम्भ किया और सब परीक्षाए बडी सफलता से पास की। सन् १८७९ मे बी० ए० की परीक्षा मे इनका नबर सब से ऊपर रहा। एफ० ए० की परीक्षा मे इन्होने सस्कृत का अध्ययन किया और बी० ए० की परीक्षा के लिए विज्ञान पढा। पीछे से सन १८९० मे इन्होने वकालत की परीक्षा भी पास की।

पहिले पहिल ये अवध अखबार के सम्पादक हुए और दो ही महीने पीछे उसे छोड कर बनारस कालेज के स्कूल-विभाग मे तीसरे अध्यापक हुए। (अगस्त १८७९ ई० मे) तीन ही महीने पीछे ये हेड मास्टर बना कर सीतापुर भेजे गए। यहाँ दो वर्ष काम करके

फैजाबाद मे सायस मास्टर हो कर आए। एक वर्ष यहाँ काम करने पर फिर बनारस मे सेकेड मास्टर हो कर आए। यहाँ ये ५ वर्ष रहे और उस काल मे आपको सस्कृत अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। फिर तो कई स्थानो मे हेड मास्टर रह कर ये असिस्टेट इँस्पेक्टर हुए। इसके अनतर सन् १८९५ मे ये डिप्टी-कलेकृर नियत किए गए। और अब पेशन लेकर प्रयाग मे रहते है।

हिंदी मे अच्छी योग्यता होने के कारण और बहुत काल तक काशी मे अच्छे अच्छे पडितो का सहवास रहने से ये हिंदी की अच्छी सेवा कर सके हैं। इनका हिंदी का पहिला ग्र थ मेघदूत का अनुवाद है जो सन् १८८३ मे प्रकाशित हुआ। इसके अनंतर इस प्रकार इन्होने ग्र थ प्रकाशित किए।

(२) कुमारसम्भव १८८४
(३) रघुवश (सर्ग ९ से १५ तक) १८८५
(४) रघुवश (सर्ग १ से ८ तक) १८८६
(५) नागानंद १८८७
(६) रघुवश (सम्पूर्ण) १८९२
(७) ऋतुसंहार १८९३

इसी बीच मे शेक्सपियर के दो नाटकों का अनुवाद इन्होने उर्दू मे छापा। एक भूलभुलैयाँ के नाम से और दूसरा दामे मुहब्बत के नाम से छपा। इसके अनतर डिप्टी-कलेकृरी के जजाल मे पड़ने से ग्र थ-रचना के काम मे कई वर्ष तक ढील रही। फिर इन्होने सस्कृत के कई नाटको का अनुवाद छापा। इनमे उत्तररामचरित्र, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक आदि मुख्य हैं। हितोपदेश और प्रजाकर्तव्य कर्म ये दो ग्र थ इन्होने और लिखे। आज कल गणित के प्राचीन ग्र थों के छापने मे आप लगे हुए हैं।

सस्कृत के काव्य-रत्नो को भाषा मे लिख कर छापने का गौरव सब से अधिक लाला सीताराम को प्राप्त है। आनंद इस बात का है कि ये अभी तक अपने विद्या-व्यसन मे लगे हुए हैं। डिप्टीकलक्टर होने पर भी शिक्षाविभाग से इनका सबध नही छूटा। ये प्राय भिन्न भिन्न परीक्षाओ मे परीक्षक नियत हुए हैं तथा कई वर्ष तक युनिवर्सिटी के फेलो और टेक्सबुक् कमेटी के मेबर भी रहे हैं।

---

(२४) पंडित राधाचरण गोस्वामी ।

पंडित राधाचरण गोस्वामी जी गौड ब्राह्मण हैं । जन्म-तिथि फाल्गुन कृष्ण ५ सवत् १९१५ तारीख २५ फरवरी सन् १८५९ ई० है । इनके पिता का नाम श्रीगोस्वामी लल्लू जी था । वे वृ दावन मे श्रीराधा-रमण के मदिर के गोस्वामी सप्रदाय के आचार्य्य थे ।

संवत् १९२१ मे गोस्वामी राधाचरण जी का कर्णवेध संस्कार हुआ और उसी समय से इनका विद्याध्ययन आरभ हुआ । इनकी माता स्वय पढी लिखी थी । अस्तु, जो कुछ ये गुरु जी से पढते थे उसे वे स्वय सुन लिया करती थी परतु सवत् १९२३ मे जब इनका देहात हो गया तो ये अपने पिता के समीप रहने लगे । कार्यवशात् जहाँ जहाँ इनके पिता को बाहर जाना पडता वहाँ ये भी उनके साथ जाते पर इससे इनके पढने लिखने मे किसी प्रकार की बाधा नही पडी । सवत् १९२७ मे इन्होने नियमित रूप से सस्कृत का अध्ययन आरभ किया । पहिले इन्होने व्याकरण और कुछ काव्य पढा और फिर श्रीमद्भागवत और अपने गोस्वामी सप्रदाय के धर्म-ग्र थ पढे ।

सवत् १९३० मे जब कि आप फरु खाबाद मे पंडित उमादत्तजी के पास कौमुदी पढते थे तब यहाँ के गवर्नमेंट स्कूल मे शहर के सस्कृत विद्यार्थियो की परीक्षा ली गई । उसमे ये भी सम्मिलित थे । अतएव वहाँ ऑँगरेजी-शिक्षा का प्रभाव और परीक्षा का ढग देख कर इन्हे ऑँगरेजी पढने का चाव हुआ । इन्होने फरु खाबाद के जिला-स्कूल मे अपना नाम लिखा लिया । यह समाचार पाकर

पंडित राधाचरण गोस्वामी।

इनकी शिष्य-मडली मे बडा हलचल मचा । लोगो ने चारों ओर से डांट बताना शुरू किया कि यदि म्लेच्छ भाषा पढोगे तो हम तुम्हे छोड देगे । तब तो जीविका जाते देख कर इन्हे विवश हो अँगरेजी पढना छोड देना पडा । उसी समय काशी से हरिश्चंद्र मेगज़ीन प्रकाशित होने लगा था । उसे पढ़ कर इनकी देश-सेवा की ओर प्रवृत्ति हुई ।

सवत् ३२ मे इन्होने अपने मित्र श्रीगोस्वामी मधुसूदन जी से मिलकर "कविकुलकौमुदी" नाम की सभा स्थापित की जिसका मूल उद्देश्य हिदी और सस्कृत की पुष्टि करना था । इस सभा के प्रथम ही अधिवेशन के तीन दिन पहिले इनकी स्त्री का देहात हो गया । परतु शोकग्रस्त अवस्था मे भी ये सभा मे सम्मिलित हुए । उस समय भी परम वैष्णव लोगो ने सभा को एक अनोखी बात समझ कर विरोध किया पर तु इन्होने किसी से प्रतिवाद न करके अपना कार्य्य करते जाना ही मुख्य समझा ।

उसी वर्ष इनका दूसरा विवाह हो गया । इन्होने अपनी इस दूसरी पत्नी को स्वय शिक्षा देकर एक सुयोग्य विदुषी स्त्री बनाया । सभा सोसाइटियो के समागम से इन्होने भिन्न भिन्न धर्मो के ग्र थ पढे जिससे इनकी विशेष ज्ञान-वृद्धि हुई । परतु इनकी ब्राह्म धर्म पर कुछ विशेष रुचि हुई और ये "हिदुबाधव" मे ब्राह्म-धर्म के पक्ष मे लेख भी लिखने लगे परतु बाबू हरिश्चद्र जी के गुप्त रूप से कटाक्ष करने पर इन्होने ब्राह्म-धर्म से अपना सबध तोड दिया । फिर इन्होंने आर्यसमाज के ग्र थ पढे और स्वामी दयानंद जी से साक्षात् प्रश्नोत्तर किए । स्वामी जी पर आपकी विशेष श्रद्धा थी ।

सवत् १९३४ से इन्होने अपनी जीविका भी सँभाली और क़लम भी सँभाली । सवत् १९४० तक के प्राय सब हिंदी के पत्रो मे आपके

लेख पाए जाते हैं। सब लेख गूढ और प्रभावजनक हैं। सब लेखों की सख्या कोई दो सौ होगी पर कोई कोई लेख तो इतने बड़े हैं कि जिनकी एक अलग पुस्तक बन सकती है। सन् १८८३ मे इन्होने "भारतेंदु" मासिक पत्र निकाला पर सहायता के अभाव से इसे बद कर देना पडा। सन् १८८४ ई० मे प्रयाग मे हिदी-पत्र-सम्पादको की एक सभा हुई थी, उसके आप मत्री थे।

सन् १८८६ मे इन्हे काग्रेस का प्रतिनिधि होकर कलकत्ता जाना पडा। वहाँ से आकर इन्होने "विदेश-यात्रा-विचार" और "विधवा-विवाह-विवरण" दो ग्रथ समाजसशोधन पर लिखे। सन् १८८५ मे ये वृदावन के म्युनिसिपल कमिश्नर चुने गए। इस पद पर इन्होने बडी स्वतत्रता, योग्यता और सावधानी से कार्य्य किया। सन् १८६३ मे इन्होने मथुरा की डिविजनल कॉग्रेस कमेटी के मत्री का कार्य किया।

इस समय भी आप वृदावन के आनरेरी मजिस्ट्रेट और म्युनि-सिपल कमिश्नर हैं। यद्यपि आप पक्के सनातन-धर्म्मावलबी हैं परतु किसी मत से द्वेष नहीं रखते बरन् वर्तमान समाज-सशोधन के आप पक्षपाती हैं।

सन् १८८३ मे जब कि शिक्षा-कमिशन बैठी थी तो इन्होने २१००० मनुष्यो के हस्ताक्षर हिदी के पक्ष मे करवाए थे। समाचार-पत्रो के तो आप इतने प्रेमी हैं कि छोटे से लगा कर बड़े तक जितने हिदी के समाचारपत्र आजलो निकले या निकल रहे हैं सब की पूरी फ़ाइले आपके यहाँ पाई जा सकती हैं।

साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ।

(२५) साहित्याचार्य्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ।

पंडित अम्बिकादत्त के पूर्वज राजपुताने के रहने वाले थे। परतु इनके पितामह पडित राजाराम जी काशी मे आ बसे थे। राजारामजी के दो पुत्र हुए । दुर्गादत्त जी और देवदत्त जी। दुर्गादत्त जी प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। हमारे व्यासजी इन्ही दुर्गादत्तजी के ज्येष्ठ पुत्र थे।

व्यास जी का जन्म सवत् १६१५ चैत्र शुक्ला अष्टमी को हुआ था। पॉच वर्ष की अवस्था होने पर इन्हे विद्याध्ययन आरम्भ कराया गया और उसी खेल कूद मे शव्दरूपावली और अमरकोष का अभ्यास कराया जाने लगा। घर की स्त्रियॉ सब पढी लिखी थी इसलिये इनकी शिक्षा उत्तम रीति से होने लगी । आठ नौ वर्ष की अवस्था होने पर इन्हे शतरज और सितार का चस्का लगा और उसी समय कविता का भी व्यसन आरम्भ हुआ।

दश वर्ष की अवस्था होने पर व्यास जी का यज्ञोपवीत हुआ और उसी समय से आप गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य देव जी के यहॉ भाषा-काव्य पढने लगे। उस समय गोस्वामी जी एक प्रसिद्ध कवि थे और उनके यहॉ अच्छे अच्छे कवि एकत्रित हुआ करते थे। ऐसा सत्सग पा कर कुशाग्रबुद्धि व्यास जी बहुत ही शीघ्र काव्य-कुशल हो गए। इन्हे एक वर्ष मे ही कविता के समस्त प्रस्तारो का अच्छा ज्ञान हो गया और ये भरी सभा मे समस्यापूर्त्ति करने लगे।

धीरे धीरे व्यास जी का बाबू हरिश्चद्रजी से परिचय हो गया और ये उनके यहॉ आने जाने लगे और इनकी कविता भी कवि-

वचन-सुधा मे प्रकाशित होने लगी। इसी बाल्यावस्था मे इन्होने महाराज काशिराज के यहाँ की धर्मसभा से भी पारितोषिक पाया। जिस समय व्यास जी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी उस समय काशी जी मे एक तैलग देश के अष्टावधानी कवि आए, उन्होने अपना बुद्धि-कौशल दिखला कर यहाँ के सब पडितो को चकित कर दिया परतु हमारे व्यास जी ने भी तत्काल शतावधान रच कर उक्त पडित को भी चकित किया। उन्होने अत्यत प्रसन्न हो कर इन्हे 'सुकवि' की पदवी प्रदान की जिसे यहाँ की सब विद्वन्मडली ने भी स्वीकार कर लिया।

१३ वाँ वर्ष आरम्भ होते ही इन्होने सस्कृत का अध्ययन आरभ किया। एक तरफ तो ये व्याकरण, साख्य, साहित्य, वेदात आदि गहन विषयो का अध्ययन करते और दूसरी ओर गान-वाद्य-सबधी कलाओ का अभ्यास करते जाते थे। सवत् १९३३ मे इन्होने काशी गवर्नमेट सस्कृत कालेज मे नाम लिखवाया और एक ही वर्ष के परिश्रम मे वहाँ से उत्तम परीक्षा पास की। सवत् १९३७ मे इन्होने आचार्य परीक्षा पास की और दूसरे वर्ष साहित्य परीक्षा पास कर के सरकार से साहित्याचार्य्य की पदवी प्राप्त की।

दुर्दैववश उसी साल इनके पिता ने परलोकवास किया इससे घर मे कलह होने लगी जिससे दुखित होकर इन्होने कलकत्ते की यात्रा की और वहाँ अपने विद्या-बल से खूब नाम पैदा किया। परतु तीन ही महीने बाद वहाँ से चले आए। और पीयूषप्रवाह प्रकाशित करने लगे जो कि इनके यावज्जीवन चलता रहा। अभ्यास करते करते इनकी धारणा यहाँ तक बढ गई थी कि ये २४ मिनट मे सौ श्लोक रच सकते थे। इसीसे काशी की ब्रह्माऽमृतवर्षिणी सभा ने इन्हे एक चाँदी के पदक सहित "घटिकाशतक" की उपाधि प्रदान की थी।

यह सब कुछ था परतु इनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नही थी इसलिये सवत् १९४० मे इन्होने मधुबनी जा कर वहाँ के स्कूल मे ३५ रु० मासिक की नौकरी कर ली। यहाँ भी इन्होने अनेक व्याख्यान दिए और सभाए स्थापित की। यहाँ सब से बडा काम जो व्यास जी ने किया वह "सस्कृत-सजीवनी-समाज" का स्थापित करना है, इस समाज के द्वारा विहार की अनिश्चित शिक्षा-प्रणाली का ऐसा सुधार हुआ कि जिससे अब सैकडो छात्र प्रतिवर्ष सस्कृत-शिक्षा पाते और उपाधि लाभ करते हैं।

सवत् १९४२ मे मधुबनी से इस्तीफा देकर ये बाँकीपुर मे चले आए। इसके दूसरे वर्ष मुजफ्फरपुर के स्कूल के हेड पडित करके वहाँ भेजे गए। सवत् १९४४ मे इनकी बदली भागलपुर के जिलास्कूल को हुई। इसी समय इन्होने सस्कृत मे 'सामवत नाटक' बना कर राजा साहेब दर्भंगा को समर्पण किया और शिवराज-विजय नामक एक उपन्यास भी सस्कृत मे लिखा। सवत् १९४८ मे इनकी विहारी-विहार की हस्त-लिखित पुस्तक चोरी चली गई। उसे उन्होने पुन पूर्ण किया। काँकरौली-नरेश ने आप को 'भारत-रत्न' की पदवी प्रदान की थी और अयोध्यानरेश ने एक स्वर्ण-पदक-सहित 'शतावधान' की पदवी दी थी।

छोटे बडे सभी इनका सम्मान करते थे। संवत् १९३५—५६ मे इन्हे गवर्नमेट पटना कालेज मे प्रोफेसर का पद मिला परतु ये शरीर से अस्वस्थ रहते थे मानो दैव ने उस पद का भोग इनके भाग्य मे लिखा ही न था। व्यास जी बँगला, महाराष्ट्री, गुजराती, अँगरेजी आदि भाषाए भी जानते थे। इन्होने हिंदी संस्कृत मे कुल ७८ ग्र थ लिखे जिनमे से बहुत से अधूरे ही रह गए और अनेक अबलो अप्रकाशित हैं।

उन्नीसवी नवबर सन् १९०० को व्यास जी का परलोकवास काशी मे हुआ।

---

(२६) पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र ।

काश्मीर की राजधानी जबू से बीस कोस पर जामवत की बेटी जाम्बवती मे गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण जी के पुत्र शाब का बसाया हुआ साँवाँ नगर है। यही साँवाँ नगर पडित दुर्गाप्रसाद की जन्मभूमि है। आप सूर्य्यवश के आदि-पुरोहित वशिष्ठ ऋषि-कुलोत्पन्न सारस्वत ब्राह्मण हैं। इनकी वश-परम्परा-उपाधि "राजोपाध्याय" है परतु पजाब मे ब्राह्मण मात्र को "मिश्र" कहते है इसीसे इनके नाम के आगे यह उपाधि लगी हुई है। इनके पिता का नाम पंडित घसीटाराम मिश्र था।

पडित दुर्गाप्रसाद मिश्र का जन्म आश्विन सवत् १९१६ की शारदीय नव दुर्गाओ मे नवमी बुधवार को हुआ था। इसीसे आपका नाम दुर्गाप्रसाद रक्खा गया। पितामह आपके सस्कृत के अच्छे विद्वान् और कर्मकाड मे परम प्रवीण पडित थे। वे सपरिवार जगदीश के दर्शन करने गए। वहाँ से लौट कर आते समय कलकत्ता-निवासी पजाबी खत्रियो ने इनसे कलकत्ते मे ही प्रवास करने का अनुरोध किया इसलिए ये भी वही रहने लगे। इनके तीन पुत्र थे और वे तीनों सौदागरों की बडी बडी कोठियो मे दलाली का काम करने लगे।

पडित दुर्गाप्रसाद मिश्र ने बाल्यावस्था मे डोगरी हिंदी और बँगला भाषाओ का घर पर ही अभ्यास किया और फिर काशी मे आकर संस्कृत पढी। इसके बाद कलकत्ते चले गए और नार्मल स्कूल मे अँगरेजी का अभ्यास करने लगे। अँगरेजी मे कुछ पढने लिखने का ज्ञान प्राप्त कर के इन्होने स्कूल छोड़ दिया और अपने बड़ों के

पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र ।

प्रेरणानुसार दलाली का काम करने लगे। इस काम को इन्होने कुशलता से किया और अपनी आय भी अच्छी बढ़ाई, पर चित्त की प्रवृत्ति इस ओर न होने से इन्होने इस काम को शीघ्र ही छोड दिया। छात्रावस्था मे पंडित दुर्गाप्रसाद जी बँगला के समाचार-पत्र बडे प्रेम से पढ़ा करते थे और उस समय उनके चित्त मे यह विचार उठा करता था कि यदि ऐसे ही पत्र हिंदी मे निकला करे तो अच्छा हो। सौभाग्यवश उसी समय काशी से कविवचनसुधा नाम का पत्र प्रकाशित होने लगा और ये उसके सवाददाता बने। इसके अनतर पटने से बिहारवधु का जन्म हुआ। इसके भी यह सहायक रहे। अब दलाली का काम छोड़ कर ता० १७ मई १८७८ को आप ने हिंदी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "भारतमित्र" को प्रकाशित करना आरभ किया, परतु ग्राहको के समय पर चदा न देने से आर्थिक त्रुटि के कारण इस पत्र का भार 'भारतमित्रसभा' को दे दिया।

इसके कुछ दिनो पीछे स्वर्गीय पंडित सदानद मिश्र के अनुरोध से इन्होने "सारसुधानिधि" नाम का एक पत्र निकाला। एक साल चल कर जब यह भी बद हो गया तब सन् १८८० मे केवल अपने बाहुबल के आश्रय पर "उचितवक्ता" पत्र प्रकाशित करना आरम किया। उचितवक्ता ने हिंदी सृष्टि मे एक नया कर्तब कर दिखलाया। इस पत्र मे गूढ राजनैतिक विषयो पर पडित जी के हँसी दिल्लगी भरे लेख सर्वप्रिय और प्रभाव-जनक होते थे।

जबू-नरेश महाराज रणवीरसिंह पंडित जी पर विशेष प्रेम रखते थे। उन्होने जबू से "जबूप्रकाश" पत्र चलाने की इच्छा से पडितजी को बुलाया था परतु उनकी अस्वस्थता के कारण यह न हो सका। तब ये फिर चलकत्ते चले आए और उचितवक्ता को चलाते रहे। महाराज रणवीरसिंह का स्वर्गवास हो जाने के कारण वर्तमान

जबू-नरेश ने इन्हे बुलाया और शिक्षा-विभाग के सर्व्वोच्च पद पर नियत किया परतु थोड़े ही दिनो के बाद राज्यप्रबध मे कुछ गडबड देख कर इन्होंने वहाँ रहना उचित न समझा और इस्तीफ़ा देकर वे वहाँ से चले आए। इन्होने स्वर्गीय बाबू भूदेव मुखोपाध्याय के अनुरोध से विहार प्रात के लिये हिदी मे कुछ पाठ्य पुस्तके भी लिखी थी जो कि अब तक बिहार के स्कूलों मे प्रचलित हैं।

जबू-राज्य से पीडित एक स्वदेशी पुरुष के कहने से इन्होने उचितवक्ता मे जबू राज्य के रहस्यो को प्रकाशित करना आरभ किया परतु इससे जब जबू की शासन-प्रणाली पर कुछ भी प्रभाव न पडा तो इन्होने देशवासियो के एक दल के सहित उस समय हिदुस्तान मे आए हुए पार्ल्यामेट के मेबर मिस्टर ब्रैडला से मुलाकात की और अपने देशवासियो का दु ख सुनाया। उन्होने विलायत जाकर इनकी बडी तारीफ की और पार्ल्यामेट मे जबूराज्य की बाते पेश करके उनका सुधार करवाया। अंत मे इन्होंने "मारवाडी-बन्धु" नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला था पर वह भी कुछ दिन चलकर बद हो गया।

अमृत-बाजारपत्रिका के प्रवर्तक सम्पादक राजनीति-कुशल बाबू शिशिर-कुमार घोष को पंडित दुर्गाप्रसाद अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। पडित जी ने हिंदी मे छोटी बडी कुल २०, २२ पुस्तके लिखी हैं। आप बडे साधारण स्वभाव के मिलनसार और हँसमुख मनुष्य थे और बगाल मे हिदी-पत्रो के जन्मदाता और प्रचारको मे थे। पंडितजी मे एक विचित्र शक्ति यह थी कि जिससे मिलते उसे मोहकर अपने वश मे कर लेते थे। आपका देहात सन् १९१० के अंत मे कलकत्ते मे हुआ।

बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ।

(२७) बाबू रामकृष्ण वर्मा ।

सन् १८४० के लगभग हीरालाल खत्री पजाब से पैदल चल कर काशी को आए। यहाँ चपरिया गली मे ठहर कर इन्होने परचूनी की दुकान खोली और करीब पचास वर्ष की अवस्था मे आजमगढ मे अपना विवाह किया, इनके राधाकृष्ण, जयकृष्ण और रामकृष्ण तीन पुत्र हुए।

बाबू रामकृष्ण वर्मा का जन्म सन् १८५९ सवत् १९१६ आश्विन कृष्ण ७ को हुआ था। जिस समय इनके पिता का ७० वर्ष की अवस्था मे देहात हुआ उस समय इनके बडे भाई राधाकृष्ण की १६ वर्ष की अवस्था थी और रामकृष्ण केवल एक वर्ष एक महीने के थे। इनकी माता ने अपने तीनो पुत्रो का बडे कष्ट से पालन पोषण किया क्योकि उस समय इनकी आर्थिक अवस्था बहुत ही हीन थी।

कुछ वय प्राप्त होने पर इनकी माता ने इन्हे पढने को बैठाया। जब इन्होने गुरु के यहाँ हिंदी पढना लिखना सीख लिया तब ये जयनारायण कालेज मे अँगरेजी पढने के लिये बैठाए गए। यहाँ भी इन्होने ख़ूब मन लगा कर पढा। बाइबिल की परीक्षा मे तो ये हमेशा औवल रहते थे। दूसरी भाषा इनकी सस्कृत थी, इन्होने सस्कृत मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त की। उक्त स्कूल से एँट्रेस पास कर लेने पर इन्होने क्वीस कालेज मे नाम लिखाया और वहाँ से इन्होने बी० ए० की परीक्षा तक पढा पर उसमे उत्तीर्ण न हो सके। कालेज मे पढते समय ये घर पर पडित हरिभट्ट मानेकर जी से सस्कृत भी पढते थे। इनकी बाइबिल पर अधिक रुचि देख कर उन्होने इन को ईसाई धर्म से हटा

कर सनातन धर्म का मार्ग बतलाया । ये अकसर कहा करते थे कि मुझे ईसाई होने से बचाने मे पडित जी ने मेरे ऊपर बडी कृपा की थी।

छात्रावस्था मे बाबू रामकृष्ण ट्यूशनो से अपनी जीविका निर्वाह करते थे। पढना छोडने के बाद इन्होने हरिश्चद्र स्कूल मे नौकरी करली पर कुछ दिन पीछे वह भी छोड दी और किताबो की एक छोटी सी दूकान कर ली। बाबू हरिश्चद्र जी की तथा गोपालमदिर के अध्यक्ष लाल जी महाराज की इन पर विशेष कृपा थी क्योकि ये बडे कुशाग्र-बुद्धि और हिदी भाषा के स्वभाव से ही एक अच्छे कवि थे। इनकी किताबो की दुकान अच्छी चली। सन् १८८४ मे कलकत्ते जाकर इन्होने एक प्रेस खरी[illegible]ा। इस प्रेस मे पहिले इन्होने ईसाई-मत-खडन नाम की एक पुस्तक छापी। उसकी खूब बिक्री हुई और जल्दी ही इनका छापाखाना चल निकला। इसी साल मार्च मास से इन्होने "भारतजीवन" नाम का पत्र प्रकाशित करना आरभ किया जो कि अब तक जारी है। इनके इस प्रेस का और पत्र का नाम बाबू हरिश्चद्रजी ने स्वय रक्खा था। इस प्रेस से हिदी की अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

बाबू रामकृष्ण वर्मा को शतरज खेलने का बडा शौक था। और उसमे ये बडे प्रवीण भी थे। इन्होने पंडित अम्बिकादत्त व्यास की सहायता से कचौरी गली मे एक 'चेस क्लब' स्थापित किया था। इन्हे ताश के खेलो का भी अच्छा अभ्यास था। सन् १८८१ ई० मे इन्होने ताशकौतुकपचीसी नाम की एक पुस्तक लिखी थी और उसे हरि-प्रकाश प्रेस मे छपवाया था। इसकी बड़ी बिक्री हुई और लोगो ने इसे बहुत पसद किया।

वैसे तो बाबू रामकृष्ण जी ने हिदी-गद्य मे अथवा पद्य में

बहुत सी पुस्तको की रचना की है परतु इनका बहुत बड़ा और अतिम परिश्रम कथासरित्सागर का भाषानुवाद है। इसे इन्होने केवल दश भागो तक अनुवाद किया था। फिर अधिक अस्वस्थता के कारण आगे ये इस काम को उत्साहपूर्वक न कर सके।

दो तीन साल से इनकी तबीयत बहुत खराब रहती थी। सन् १९०५ मे ये बहुत बीमार हो गए थे पर अच्छे हो गए। फिर सन् १९०६ मे इन्हे जलोदर रोग हुआ और उसीसे ता० २५ दिसंबर सन् १९०६ के सध्या को इनका स्वर्गवास हो गया। इनकी सतति एक कन्या है।

बाबू रामकृष्ण ने अपने परिश्रम और अध्यवसाय से अच्छी उन्नति की और नाम पैदा किया। अपने बाहुबल से मनुष्य क्या कर सकता है इसके ये आदर्श थे।

पंडित श्रीधर पाठक।

ता कुछ फ़ारसी पढी और सन् १८७५ ई० मे तहसीली स्कूल से हिंदी की ः ाेका परीक्षा पास की। इस परीक्षा मे प्रात भर मे इनका नंबर पहिला रहा। सन् १८७६ ई० मे आगरा कालेज से अँगरेजी मिडिल की परीक्षा पास की और इसमे भी सब उत्तीर्ण परीक्षितो मे प्रथम पद प्राप्त किया। इसके एक ही साल बाद सन् १८८० ई० मे इन्होने एँट्रेंस परीक्षा पहिली श्रेणी मे पास की।

उक्त परीक्षा पास करने के छ महीने बाद सन् १८८१ मे आप कलकत्ते चले गए और वहाँ ६० रु० मासिक पर सेसस कमिश्नर के स्थायी दफ़्तर मे नौकर हुए। इसी नौकरी मे इन्हे शिमला जाकर हिमालय का उदग्र वैभव देखने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ से लौटने पर कुछ दिन के अनतर इलाहाबाद मे लाट साहिब के दफ़्तर मे ३०) मासिक पर नियुक्त हुए। इस दफ़्तर के साथ पाठक जी को कई बेर नैनीताल जाने का सौभाग्य हुआ। सन् १८९८ ई० मे जब कि इन का वेतन २००) रु० मासिक था इनकी आगरे को बदली हुई और वहाँ से सन् १९०१ ई० मे ३००) रु० मासिक वेतन पर इरीगेशन कमिशन के सुपरिंटेडेंट नियुक्त हुए। कमिशन के अंत (सन् १९०३) तक ये उसी के साथ रहे। तदनंतर एक वर्ष पर्यंत भारत गवर्नमेंट के दफ़्तर मे डिपटी सुपरिंटेडेंट और सुपरिंटेडेंट रहे। फिर उस पद को त्याग तीन मास की छुट्टी ले कर काश्मीर की सैर को पधारे। और वहाँ से लौट आने पर "कश्मीर सुखमा" नामक सुललित काव्य रचा। पाठक जी सरकारी काम बडे परिश्रम और सावधानी से करते है और उत्तम अँगरेजी लिखने के लिए ख्यात हैं। सन् १८९८—९९ की प्रातीय इरीगेशन रिपोर्ट मे आपकी प्रशसा छपी है। इस समय ये युक्त प्रदेश के लाट साहेब के दफ़्तर मे ३००) रु० मासिक पर सुपरिंटेडेंट हैं।

पडित श्रीधर पाठक इस समय हिंदी भाषा के एक अच्छे कवि हैं। आप ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो मे एक समान कविता रचते हैं। परतु खडी बोली मे आपकी कविता आदर्श रूप होती है। आप उसके पक्के समर्थक और सरल सरस-प्रसाद गुण-विशिष्ट स्वभाव सु दर उक्ति के प्रदर्शक है। निदान इस विषय मे आप अद्वितीय है।

इन्होने स्कूल मे पढते समय सब से पहिले अपनी जन्मभूमि जोधरी ग्राम की प्रशसा मे एक कविता रची थी परतु वह प्रकाशित नही की गई वरन् रचना के पश्चात् शीघ्र ही नष्ट कर दी गई। उसके बाद जब जो मौज मे आया लिखा। आपकी स्फुट कविताओ का सग्रह "मनोविनोद" नाम से पुस्तकाकार तीन भागो मे प्रकाशित हो गया है और हिंदी के सब सहृदय-प्रेमियो की बडे प्रेम और आदर की वस्तु है। कारण यह कि पाठक जी के पद्य मात्र मे एक ऐसी स्थायी मनोहरता है कि बार बार पढ कर भी फिर पढने को जी करता है। गोल्डस्मिथ के तीन ग्रथो का पद्यानुवाद आपने "एकांतवासी योगी" "ऊजड ग्राम" और "श्रातपथिक" नाम से प्रकाशित किया है। इन तीनो ग्रथो का बड़ा प्रचार और सम्मान है। इसमे से श्रातपथिक खडी बोली मे अँगरेज़ी-पद्य की एक पक्ति का हिंदी की एक पंक्ति मे अनुवाद है। आप प्राकृतिक दृश्यो का अच्छा चित्र खीचते है।

प्रयाग मे आपने एक रमणीक निवासस्थान निर्मित कराया है और उसी मे अब रहते हैं।

महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ।

(२६) महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ।

बहुत दिन हुए चैनसुख नामक एक सरयूपारी दुबे ब्राह्मण काशी मे सस्कृत पढने आए। वे शिवपुर के पास मॅडलाई गाँव मे एक उपाध्याय के यहाँ अध्ययन करने लगे। उपाध्याय जी की कोई सतति न होने के कारण चैनसुख ही उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हुए। इनसे कई पीढी पीछे शारगधर और शिवराज दो भाई हुए। शारगधर ने खजुरी मारनाथ आदि कई गाँवों की जमीदारी लेकर खजुरी मे अपना निवास-स्थान नियत किया। शिवराज उपाध्याय के तीन पुत्र हुए, जिनमे रामप्रसाद सब से छोटे थे। इनके समय मे केवल खजुरी की जमीदारी हाथ मे रह गई थी। रामप्रसाद के पाँच पुत्र हुए। जिनमे कृपालुदत्त सब से छोटे थे। कृपालुदत्त ज्योतिष-विद्या मे निपुण हुए और इनके हस्ताक्षर भी अच्छे होते थे। कीस कालेज की भीतो पर अकित अक्षर इन्ही के लिखे हुए हैं। पडित सुधाकरजी इन्ही कृपालुदत्त के पुत्र है। पडित कृपालुदत्त स्वय भाषा काव्य के बडे प्रेमी तथा कवि थे।

जिस समय सुधाकर जी का जन्म हुआ इनके पिता मिर्जापुर मे थे। इनके चचा दरवाजे पर बैठे थे। डाकिये ने आकर सुधाकर नामक पत्र उनके हाथ मे दिया तब तक भीतर से लड़के के जन्म होने की खबर आई। आपने कहा कि इस लडके का नाम सुधाकर हुआ। इनका जन्म सवत् १६१७ चैत्रशुक्ला चतुर्थी सोमवार को हुआ था। द्विवेदीजी की ६ मास की अवस्था होते ही इनकी माता का देहांत हो गया इसलिये इनके लालन पालन का भार इनकी

दादी पर पडा। इनके पिता घर पर नही रहते थे। और घर भर का इन पर विशेष प्यार था। इसीसे आठ वर्ष की अवस्था तक इनकी शिक्षा की ओर किसी ने कुछ भी ध्यान न दिया। इसके बाद जब इनके बड़े चचा ने इन्हे पढने को बैठाया तो इन्होंने थोडे ही समय मे बहुत उन्नति कर दिखलाई। यज्ञोपवीत होते ही इनकी धारणाशक्ति ऐसी तीव्र हो गई कि जो पद्य एक बार देखा कंठस्थ हो गया।

इनके बडो ने तो सोचा कि इन्हे कुछ व्याकरण पढाकर कथा पुराण बाँचने योग्य बना दिया जाय, पर इनकी तबीयत ज्योतिप शास्त्र मे लग गई और केवल लीलावती पढ कर ये गणित के बडे बडे प्रश्नो को सहज मे हल करने लगे। इनकी ऐसी तीव्र बुद्धि देख कर पडित वापूदेव शास्त्री इनसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने क्वीस कालेज के प्रिसपल ग्रिफिथ साहिब से इनकी बडी प्रशसा की। इससे इनका उत्साह और भी बढ गया। इनके बडो ने गणित के विशेष अध्ययन से इन्हे रोकना चाहा पर ये गणित के रग मे ऐसे रँग गए थे कि उस विद्या मे पूर्ण पाडित्य प्राप्त किया। योही ज्योतिष विषय पर बाते होते होते एक दिन इनका वापूदेव शास्त्री से कुछ झगडा हो गया जिससे दोनों मे कुछ वैमनस्य हो गया। पं० वापूदेव शास्त्री के पीछे आप बनारस के सस्कृत कालेज मे गणित और ज्योतिष के अध्यापक हुए और अंत काल तक उस पद पर सुशोभित रहे।

पडित सुधाकर जी ज्योतिष और गणित के जैसे पडित थे सो तो सब जानते हैं परतु अपनी मातृभाषा हिदी के भी आप अनन्य प्रेमी और बडे विद्वान् थे। आप तुलसीदास, सूरदास, कबीर, तथा अन्यान्य भाषा के शिरोमणि कवियो के काव्यो मे अच्छा प्रवेश रखते थे। आप ऐसी सरल हिदी के पक्षपाती थे जो कि सहज ही सर्वसाधारण की समझ मे आ सके। आपने सब मिलाकर हिदी भाषा मे कोई १७

पुस्तके रची और सम्पादित की हैं। आप बाबू हरिश्चद्रजी के प्रिय मित्रो मे से थे।

सुधाकर जी की रहन सहन सादी, स्वभाव सीधा, और चाल सर्वप्रिय थी। आपका सिद्धात था कि कोई छोटा बडा नही है। सब एक ही से जन्मते और एक ही से मरते हैं। ईश्वर ने जिसके शिर पर भार रख दिया है उसे अंत तक निवाह ले जाना ही बड़प्पन है। आप ने कुछ दिनो तक कीस कालेज मे गणित के प्रोफ़ेसर का भी काम किया था, और अनेक वर्षो तक काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के सभापति रहे। आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर गवर्नमेंट ने आपको महामहोपाध्याय की उपाधि से भूषित किया था। आपकी सुकीर्ति योरोप तक फैली थी।

आपका देहात २८ नवबर सन् १९१० को काशी मे हुआ। पंडितजी ने मातृ-भाषा हिदी की बहुत कुछ सेवा की पर अंत मे कुछ कुचक्रियों के फेर मे पड़ कर 'रामकहानी' नाम की पुस्तक लिख कर उसकी उन्नति के मार्ग मे बाधा डाली।

———

(३०) बाबू देवकीनंदन खत्री ।

मुल्तान के दीवान तथा तालुक्केदार लाल नौनिद्धिराय एक बडे भारी आदमी थे। उनकी कई पीढी पीछे उनकी संतान के कई लोग लाहौर मे आ बसे, परंतु राजा रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह के समय मे जब लाहौर मे एक प्रकार की अराजकता सी फैल गई तब लाला अचरजमल सपरिवार लाहौर छोड कर काशी मे आ बसे।

लाला अचरजमल के दो पुत्र हुए, लाला नंदलाल और लाला ईश्वरदास। लाला नंदलाल के तीन लडके हुए, बाबू देवीप्रसाद, बाबू भगवानदास और बाबू नारायणदास, और लाला ईश्वरदास के पुत्र हमारे चरित्रनायक बाबू देवकीनंदन है।

आपका जन्म संवत् १९१८ के आषाढ मास मे हुआ था, माता आपकी मुजफ्फरपुर के बाबू जीवनलाल महता की बेटी थी इस कारण इनके पिता अक्सर वही रहा करते थे। इनका जन्म भी मुजफ्फरपुर का है और वहीं इनका लालन पालन भी हुआ। कुछ वयोवृद्ध होने पर इनको पहिले हिंदी और फिर संस्कृत पढाई गई, फारसी भाषा से इन्हे स्वाभाविक प्रेम था परंतु इनके पिता की उस ओर बडी अरुचि थी इसी कारण ये बाल्यावस्था मे तो फारसी न पढ सके परंतु १८ वर्ष की अवस्था के अनंतर जब ये गयाजी मे स्वतंत्र रहने लगे तो इन्होने फ़ारसी और उसी के साथ साथ कुछ अँगरेजी का अभ्यास किया।

गया जिले के टिकारी राज्य मे इनके पिता का व्यापारिक संबंध था। इसी कारण इन्होंने गया जी मे एक कोठी खोली और वहाँ

बाबू देवकीनदन खत्री ।

उसका स्वतत्र प्रबध करने लगे। वहाँ इनको अच्छी आमदनी थी, बस एक तो रुपया पास, दूसरे युवा अवस्था, तीसरे स्वतत्रता, तीनो ने अपना चमत्कार दिखलाया और अपने पात्र से मनमाना नाच नचवाया। कुछ दिनों पीछे जब टिकारी राज्य मे नाबालगी के कारण सरकारी प्रबध हो गया और इनका उस राज्य से सबध टूटा तो ये काशी चले आए, उस समय इनकी २४ वर्ष की अवस्था थी।

टिकारी राज्य मे बनारस के राजा महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिह की बहिन ब्याही थी। इसी से ये बनारस मे उक्त महाराज के कृपापात्र हुए। इन्होने मुसाहब बन कर दरबार मे रहना तो पसंद न किया परतु चकिया और नवगढ के जगलो का ठीका लिया। इन जगलो की लाह लकडी तथा और और पैदावार की आमदनी इनको थी इसी कारण इनको सब जगह घूमना फिरना पड़ता था। इस अवस्था मे इन्होने जगल की खूब सैर की। उक्त जगलो के बीहड, वन, पहाडी, खोहे और प्राचीन इमारतो के अवशेष आदि दर्शनीय स्थान इन्होने बडी सावधानी से देखे।

इसी समय इनको कुछ लिखने की धुन समाई और हिंदी मे चद्रकाता नामक उपन्यास लिखने का इन्होने लग्गा लगा दिया। इस पुस्तक मे इन्होने अपने गया जी की जवानी के तजरुबे और काशी मे आने पर अपनी आखो देखी हुई जगलो की बहार का वर्णन किया है। चद्रकांता पहिले हरिप्रकाश प्रेस से छप कर प्रकाशित हुई। यह पुस्तक सर्वसाधारण को बडी रुचिकर हुई यहाँ तक कि सैकडो आदमी इसी की बदौलत हिंदी के पाठक बन गए और कई एक को इसी की बदौलत हिंदी लिखने का शौक लग गया।

चद्रकांता और सतति के ११ नंबर हरिप्रकाश प्रेस मे छपे, इसके पीछे सन् १८९८ के सितबर मे आपने लहरी प्रेस, नाम से अपना

निज का प्रेस खोल लिया । इनके नरेंद्रमोहनी, कुसुमकुमारी, वारे-द्रवीर, काजर की कोठरी और भूतनाथ ये पाँच उपन्यास और भी हैं । ये सब निज कल्पना शक्ति से लिखे गए है । इन्होने अपने निज के खर्चे से सुदर्शन नाम का एक मासिक पत्र भी निकाला था जो कि उस समय हिंदी मे एक प्रसिद्ध मासिकपत्र था । सम्पादक इसके पंडित माधवप्रसाद मिश्र थे । परन्तु सम्पादक महाशय का देहात हो जाने से सुदर्शन का भी अदर्शन हो गया ।

बाबू देवकीनंदन ने हिंदी-साहित्य के एक अंग की पूर्ति मे बहुत नाम पाया है और इसीसे उनके द्वारा हिंदी भाषा का भी बहुत उपकार हुआ है ।

इन का देहात १ अगस्त १९१३ को हो गया ।
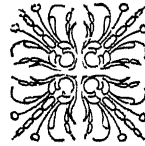
पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र ।

(३१) पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र।

मुरादाबाद-निवासी पडित ज्वालाप्रसाद जी का जन्म आषाढ कृष्ण २ संवत् १९१९ का है। आप मृत पडित बलदेवप्रसाद जी के बड़े भाई है। इनके पूर्व पुरुष पहिले पटने मे रहते थे पर अब बहुत दिनो से मुरादाबाद मे आ रहे हैं। इनके पिता का नाम सुखनदन मिश्र था। जिस दिन इनकी अवस्था का पाँचवाँ वर्ष पूरा हुआ ठीक उसी दिन इनको एक चोट्टा उठा कर जगल मे ले गया। उसने इनका सब जेवर तो उतार लिया पर कुशल हुई कि इन्हे जगल मे जीता छोड़ दिया। उस आधी रात्रि के समय न जाने किस पुरुष ने इन्हे लाकर थाने मे बैठा दिया।

आठ वर्ष की अवस्था होने पर इनका यज्ञोपवीत सस्कार हुआ और उसी समय से इन्हे सर्वगुण आगरी नागरी का अध्ययन आरभ कराया गया। इसके दो वर्ष पीछे इन्होने अँगरेजी पढना आरभ किया और उसे ये पाँच वर्ष तक पढ़ते रहे परतु एक आर्य्यसमाजी मास्टर से धार्मिक वाद विवाद हो उठने के कारण इन्होने स्कूल छोड दिया और घर पर संस्कृत का अध्ययन आरभ किया। व्याकरण, काव्य, कोष आदि का अध्ययन कर लेने पर इन्होने स्वय अच्छे अच्छे ग्रथो के पढने का अभ्यास डाला जिससे सस्कृत-विद्या और हिदू धर्मशास्त्र दोनो मे इनकी अच्छी पैठ हो गई।

पंडित ज्वालाप्रसाद जी को सनातन धर्म पर स्वाभाविक श्रद्धा है इसीसे इन्होने पहिले पहिल निज मत मंडन और दयानंद मत खंडन विषय पर "दयानंद तिमिरभास्कर" नाम की एक पुस्तक रची।

इस पुस्तक का सनातन-धर्मावलंबी लोगो मे बडा आदर हुआ। इससे इनका उत्साह बढ गया और फिर ये पुस्तक-रचना मे संलग्न हुए और लोगो की रुचि के अनुसार इन्होने कई पुस्तके रची।

कुछ दिनो के बाद आपके ध्यान मे आया कि यदि सस्कृत-पुस्तको का भाषानुवाद करके हिंदी-साहित्य का भडार भरा जाय तो बहुत ही अच्छा हो। इससे मातृभाषा की उन्नति होगी और लोगो का उपकार भी होगा। यह विचार कर आप इस ओर झुके और आपने अब तक सस्कृत के ३० ग्रथो का अनुवाद किया है। ये सब पुस्तके प्राय व्यकटेश्वर प्रेस मे छपी है। इन्होने शुक्लयजुर्वेद पर मिश्र भाष्य नाम से भाषा-भाष्य रचा है। वह बडा ही विलक्षण और अपने ढग का एक ही ग्रथ है। इसके सिवाय इन्होने जातिनिर्णय, अष्टादश पुराण, सीता-वनवास नाटक, भक्तमाल आदि भाषा के कई ग्रथ स्वय लिखे है। आप सनातन हिंदू धर्म के सच्चे पक्षपाती और हितेच्छु हैं इस लिये आप धार्मिक विषय पर व्याख्यान देने की भी अच्छी शक्ति रखते है। आप पजाब मे पेशावर तक, दक्षिण मे हैदराबाद तक व्याख्यान देते हुए समय समय पर देशाटन किया करते हैं। आपने कई एक सभाओ मे आर्यसामाजिक पडितो से शास्त्रार्थ करके जय पाई है।

इन्ही सब कारणो से भारतधर्म-महामडल मे इनका बडा मान है। वहाँ से इन्हे विद्यावारिधि और महोपदेशक का पद प्राप्त है। कलकत्ते के कान्यकुब्ज-मडल से आपको एक स्वर्णपदक भी मिला है।

इस समय आप मुरादाबाद मे रहते है। निज व्यय से चलने वाली कामेश्वरनाथ नाम की पाठशाला मे आप पढ़ाते हैं और जो शेष समय बचता है उसमे सस्कृत के ग्रंथो का भाषानुवाद करके अपने अमूल्य जीवन को सदुपयोग मे लगा रहे हैं।

आनरेब्ल पंडित मदनमोहन मालवीय बी. ए. एल. एल. बी.

(३२) आनरेब्ल पंडित मदनमोहन मालवीय बी० ए०, एलएल० बी०।

इनके पूर्व पुरुष मालवा देश के निवासी थे इसीसे ये और इनके कुटुंब के लोग मालवी उपाधि से भूषित है। कोई तीन सौ वर्ष हुए होगे कि इनके पूर्वज मालवा देश छोड़ कर इलाहाबाद मे आबसे। मालवीयजी के पूर्वजो मे एक न एक पुरुष विद्वत्ता और धर्मनिष्ठा के लिये प्रसिद्ध होता आया है।

पडित मदनमोहन मालवीय जी के पिता का नाम पडित बैजनाथ मालवीय था। ये कोई पाँच वर्ष हुए स्वर्गलोक को पधारे हैं और सस्कृत के अच्छे पडित थे। मालवीयजी का जन्म सन् १८६२ मे तारीख १८ दिसबर को हुआ था। इनकी प्रारभिक शिक्षा हिंदी मे घर ही पर हुई। जब ये हिंदी भली भाँति लिखने पढने लगे तब अँगरेजी पढने के लिये गवर्नमेट स्कूल मे बैठाए गए। वहाँ एँट्रेंस की परीक्षा पास करके इन्होने म्योर सेंट्रल कालेज मे नाम लिखाया और सन् १८८४ ई० मे वहीं से बी० ए० की परीक्षा पास की।

बी० ए० की परीक्षा पास कर चुकने पर इच्छा होने पर भी कई कारणो से वे आगे न पढ सके और उसी वर्ष गवर्नमेट स्कूल मे अध्यापक नियत हुए। इन्होने इस पद पर तीन वर्ष तक बडी योग्यता से काम किया। सन् १८८७ ई० मे कालाकाकर के तअल्लुकेदार राजा रामपाल सिहजी इन्हे अपने यहाँ लिवा ले गए और अपने यहाँ से प्रकाशित होने वाले हिंदी भाषा के दैनिक पत्र हिंदोस्थान का सम्पादन

इनके हाथ मे दिया । इन्होने हिंदोस्थान की उन्नति करने मे यथासाध्य परिश्रम किया और विलक्षण दक्षता के साथ ढाई वर्ष तक उसका सम्पादन किया । यद्यपि मालवीयजी ने हिंदी मे कोई विशेष ग्रथ नही लिखा है परतु हिंदोस्थान की पुरानी फाइले देखने से ज्ञात होता है कि ये मातृभाषा हिंदी के कैसे अच्छे लेखक है । इनकी ओजस्विनी और सरल लेखप्रणाली पाठको के चित्त पर पूरा प्रभाव उत्पन्न करने-वाली है ।

ढाई वर्ष तक हिंदोस्थान का सम्पादन करने के बाद आपकी इच्छा कानून अध्ययन करने की हुई । यह जान कर राजा रामपाल-सिंह ने इन्हे अपने यहाँ से प्रसन्नतापूर्वक रुखसत दी और इनके कानून के अध्ययन मे यथासाध्य सहायता दी । तीन वर्ष कानून पढ कर इन्होने सन् १८९१ मे हाईकोर्ट की परीक्षा पास की और अगले वर्ष सन् १८९२ मे एलएल० बी० की उपाधि प्राप्त की । तब से अब तक आप इलाहाबाद हाईकोर्ट मे वकालत करते हैं और अपने देश तथा देश-भाइयों के हित की चितना मे तत्पर रहते हुए अपने मनुष्य-जीवन को सफल कर रहे हैं ।

मालवीयजी हिंदी भाषा के ग्रथकार नही पर हिंदी के अच्छे लेखक और सच्चे शुभचिंतक हैं । आप काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के एक सम्मानित सदस्य हैं । सर ए टनी मेकडानल के समय मे जब कि सयुक्त प्रदेश की प्रजा की ओर से प्रातीय गवर्नमेट की सेवा मे अदा-लतो मे नागरी लिपि का प्रचार करने की प्रार्थना की गई थी उस समय आपने इस कार्य मे विशेष उद्योग किया था, वरन यह कहना चाहिए कि इस कार्य मे सफलता केवल आपही के परिश्रम का फल है । लाट साहब की सेवा मे नागरी मेमोरियल का भेजना, नागरी के सच्चे गुणो के कीर्त्तन मे पुस्तक लिखना और स्वार्थ-शून्य हो निज के

हजारों रूपए खर्च कर इसी कार्य्य मे लग जाना पडितजी के लिये एक बडे गौरव की बात है ।

मालवीयजी एक सादे मिजाज और सादी रहन सहन के व्यक्ति है और बडे मिलनसार और सच्चरित पुरुष हैं। आप इस प्रात के प्रधान राजनैतिक पुरुषो मे मे हैं और अपना बहुत कुछ समय देश-सेवा मे लगाते हैं। आप सनातन हिंदू धर्म को हृदय से मानते और उसकी उन्नति मे तन मन से दत्तचित्त रहते हैं। आपने प्रयाग मे एक सनातन-धर्म-सभा स्थापित की है जिसका प्रतिवर्ष माघ मेले के अवसर पर त्रिवेणी के तट बृहदधिवेशन होता है। परतु इसके साथ ही आप सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के भी पूरे पत्तपाती हैं। आपके उद्योग से प्रयाग मे एक बडा सु दर हिंदू बोर्डिंग हाउस बना है। इस समय आप काशी मे हिंदू-विश्वविद्यालय के स्थापित करने मे प्राण-पण से लगे हुए हैं। आप लाट साहिब की कौंसिल के सभासद् हैं और देशवासियो के पत्त-समर्थन मे सदा दत्तचित्त रहते हैं।

---

(३३) पंडित गौरीशंकर हीराचद ओझा।

हिंदी के इतिहास-मर्मज्ञ विद्वानो मे पडित गौरीशकर हीराचद ओझा का आसन ऊँचा है। इन्होने हिंदी की सेवा के उद्देश्य से जो जो ऐतिहासिक पुस्तके लिखी है उन सब की बडे बडे विद्वानो ने मुक्त-कठ से प्रशसा की है।

इनके पूर्वज मेवाड के रहने वाले थे। कोई २२५ वर्ष हुए होगे कि वे लोग सिरोही राज्यातर्गत रोहिडा ग्राम मे जा बसे। यही १५ सितबर सन् १८६३ मे ओझाजी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम हीराचद और दादा का पीताबर था। ये जाति के सहस्र औदीच्य ब्राह्मण है। सात वर्ष की अवस्था मे इन्होने एक पाठशाला मे हिंदी पढना आरभ किया। दो वर्ष हिंदी अध्ययन करते रहे। अनतर आठ वर्ष की अवस्था मे यज्ञोपवीत सस्कार होने पर वेदाध्ययन आरभ किया। चार वर्ष मे सपूर्ण शुक्ल यजुर्वेदीय सहिता कठाग्र करके गणित पढना प्रारभ किया। पर किसी उपयुक्त गुरु के न मिलने से ओझाजी १४ वर्ष की अवस्था मे बबई चले गए और वहाँ पहिले ६ महीने तक गुजराती भाषा सीखते रहे। अनतर एलिफ़स्टन हाई स्कूल मे भरती हो कर सन् १८८४ मे मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की। इसके साथ ही साथ प्रसिद्ध पडितवर गट्टूलालजी के यहाँ सस्कृत और प्राकृत पढ़ते रहे। सन् १८८६ ई० मे विल्सन कालेज मे इन्होने प्रीवियस परीक्षा की पढाई प्रारभ की। पर शरीर की अस्वस्थता के कारण परीक्षा के पूर्व ही अपने ग्राम रोहिड़े को लौट आए। फिर कुछ काल के पीछे बबई

पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

जाकर प्राचीन लिपियो के पढने और प्राचीन इतिहास के अध्ययन मे इन्होने अपना दो वर्ष का समय लगाया। सन् १८८८ ई० मे जब ये अपनी बहिन से मिलने उदयपुर आए तो महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने इनके गुणो से प्रसन्न होकर इन्हे अपने इतिहास-कार्यालय का मत्री नियत किया। सन् १८६० ई० मे विक्टोरिया हाल खुलने पर ये वहाँ की म्यूजियम लायब्रेरी के अध्यक्ष नियत हुए और अब अजमेर मे जो नया सर्कारी म्यूजियम खुला है उसकी अध्यक्षता के कार्य पर नियत है।

सन् १८६३ ई० मे इन्होने हिदी मे एक अपूर्व ग्र थ लिखा। प्राचीन इतिहास-उद्धार के लिये प्राचीन लिपियो का पढना बडा आवश्यक है परतु इस काम के लिये किसी भापा मे कोई पुस्तक न थी। पडितजी ने प्राचीन लिपिमाला नाम की पुस्तक लिख कर इस अभाव की पूर्ति की। इस पुस्तक की बडे बडे विद्वानो तथा सोसाइटियो ने असाधारण प्रशसा की है। सन् १६०२ ई० मे इन्होने कर्नल टाड का जीवन-चरित्र लिखा और टाड साहब-लिखित राजस्थान के अनुवाद पर टिप्पणी लिखना प्रारभ किया। यह दूसरा ग्र थ छप रहा है और जिन लोगो ने इसके छपे हुए भागो को देखा है वे पडितजी की विद्वत्ता का अनुभव कर सकते है। आपने अब एक ऐतिहासिक ग्र थ-माला नाम की पुस्तकावली छापना प्रारभ किया है। इसके पहिले भाग मे सोलकियो का इतिहास है। सिरोही राज्य का भी इतिहास आपने लिखा है। इस समय आप पृथिवीराजविजय नामक ऐतिहासिक काव्यग्र थ के सम्पादन मे लगे हुए हैं। यह ग्र थ इतिहास का अमूल्य रत्न है। प्राचीन शोध का पडितजी को बडा व्यसन है। वे अपना सारा समय इसके अर्पण करते है। प्राचीन स्थानो को देखना, उनका इतिहास जानना, प्राचीन वस्तुओ का सग्रह करना बस इन्ही

मे आपका कालक्षेप होता है। प्राचीन सिक्को का एक बहुमूल्य संग्रह आपने किया है।

पडितजी का उदयपुर राज्य मे बडा मान था और ब्रिटिश गवर्नमेट ने भी आपके गुणो पर रीझ कर अनेक बेर अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया है। उदयपुर मे जितने वाइसराय गए है उनसे मिलने और बातें करने का पडितजी को सदा गौरव प्राप्त हुआ था। कुछ वर्ष हुए कलकत्ते मे एक म्यूजियम कान्फरेस गवर्नमेट की तरफ से हुई थी उसमे पंडितजी निमत्रित हो कर गए थे।

आप प्रकृति के सरल और अभिमान-रहित हैं और बड़े सतोगुणी और सच्चरित्र हैं। जिन्हे एक बेर भी आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे आपके गुणो और स्वभाव पर मोहित हैं। आपसे विद्वान हिंदी-समाज के गौरव तथा अभिमान के कारण हैं।

लाला बालमुकुंद गुप्त ।

(३४) लाला बालमुकुंद गुप्त ।

लाला बालमुकुद गुप्तजी अग्रवाल वैश्य थे। इनका जन्म सन् १८६५ ई० मे पजाब के रोहतक जिले के गुरयानी नामक ग्राम मे हुआ था।

पजाब प्रात मे इस समय हिदी की जो कुछ थोडी बहुत चरचा है सो आर्यसमाज की बदौलत है परतु जिस समय गुप्तजी की बाल्यावस्था थी उस समय तो वहाँ हिदी का काला अक्षर भैंस बराबर था। गुप्तजी को बाल्यावस्था मे केवल उर्दू फारसी की शिक्षा दी गई थी। वय प्राप्त होने पर आपने हिदी का अध्ययन अपने शौक से किया था। इनको अच्छे अच्छे मजमून लिखने का अभ्यास बालकपन से ही था। जब आप घर पर थे तभी लखनऊ के अवध अखबार, और अवध पंच, लाहौर के कोहनूर, मुरादाबाद के रहबर, और स्यालकोट के विक्टोरिया पेपर आदि अखबारो मे लेख लिखा करते थे। इसलिये इनका नाम तभी से लेखको मे प्रसिद्ध था।

अस्तु, चुनार के प्रसिद्ध रईस बाबू हनुमानप्रसाद ने जब चुनार से "अखबारे चुनार" जारी किया तो इन्होने लाला बालमुकुद को बुलाकर उसका सम्पादक नियत किया। इन्होने अखबारे चुनार को ऐसी योग्यता से चलाया कि उसे सयुक्त प्रात के सब अखबारो मे सिरे कर दिया परतु कुछ दिनो पीछे गुप्तजी लाहौर को चले गए और वहाँ सप्ताह मे तीन बार निकलने वाले "कोहनूर" के सम्पादक हुए। कुछ दिनो मे आपने उस पत्र को दैनिक कर दिया।

उन्ही दिनो कालाकाकर के राजा रामपालसिह जी ने इँगलैंड से आकर "हिदी हिदोस्थान" पत्र जारी कर दिया था। पंडित

मदनमोहन मालवीय उसके सम्पादक थे। वृंदावन मे श्री भारतधर्म-महामडल के अधिवेशन मे मालवीय जी गए थे और गुप्त जी भी वहाँ आए थे। पडित दीनदयालु शर्म्मा द्वारा दोनो महाशयो का परस्पर परिचय हुआ। अस्तु, जब मालवीय जी हिंदोस्थान का सम्पादन छोड़ने लगे तब इन्होने गुप्त जी को कालाकाकर मे बुलाकर सहकारी सम्पादको मे नियत करवाया। राजा साहब स्वय सम्पादक थे। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पडित राधारमण चौबे, चौबे गुलाबचद, पडित रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चैटर्जी, पडित गुरुदत्त शुक्ल और बाबू गोपालराम आदि लेखको की कमेटी उनकी सहायक थी और लाला बालमुकु द गुप्त उस कमेटी के सभापति या मुखिया थे।

कुछ दिनो के बाद गुप्त जी कालाकाकर से घर को चले गए। इनके जाते ही उक्त नवरत्न कमेटी तीन तेरह हो गई। उन्ही दिनो कलकत्ते मे हिंदी-बगवासी का जन्म हुआ। जिस समय काशी मे भारतधर्म-महामडल का अधिवेशन हुआ तो बगवासी के मालिक वहाँ आए थे। गुप्त जी भी घर से आकर इस अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थे। यहीं बगवासी के मालिक से और इनसे परिचय हो गया। उन्ही दिनों हिंदी बगवासी मे "शिक्षित हिंदू बाला" नाम का एक उपन्यास निकलता था। जब गुप्त जी काशी से लौट कर घर आए तो इन्होने उक्त उपन्यास की समुचित समालोचना करते हुए बगवासी सम्पादक बाबू अमृतलाल चक्रवर्ती को एक पत्र लिखा। उसके उत्तर मे उन्होने गुप्त जी की कृतज्ञता प्रकट की और इन्हे कलकत्ते बुला कर अपना सहकारी नियत किया। यह बात सन् १८९३ ई० की है।

कुछ दिनों के बाद गुप्त जी बगवासी के सम्पादक हुए। वहाँ सात वर्ष तक आपने बड़ी योग्यता से काम किया परतु जब बगवासी

के मालिको मे परस्पर झगडा पैदा हुआ तो इन्होने इस्तीफ़ा दे दिया और घर को चले गए। घर पहुँचे देर न हुई थी कि भारतमित्र के मालिक ने इन्हे कलकत्ते बुला लिया और भारतमित्र का सम्पादन-भार इनको दिया । तब से जीवन-लीला के समाप्त होने तक इन्होने भारतमित्र का सम्पादन बडी योग्यता से किया। लाला बालमुकुन्द गुप्त का परलोकवास सन् १९०७ भाद्र शुक्ला ११ बुध-वार को देहली मे हुआ। गुप्त जी एक बडे ही चतुर और बुद्धिमान् पुरुष थे। इनके लिखे हुए पुस्तकाकार लेखो मे तो केवल रत्नावली-नाटिका, हरिदास, शिवशम्भु का चिट्ठा, स्फुट कविता और खिलौना आदि पुस्तकें है। आप की लेख-प्रणाली बडी ही उत्तम थी। आप अच्छे समालोचक थे। इनके सब लेख प्रभाव-जनक होते थे। इनकी भाषा बडी ही सरल और मनोहर होती थी।

---

(३५) पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय अगस्त्य गोत्रीय और शुक्ल यजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पडित भोलासिंह उपाध्याय था। आदि मे इनके पूर्व पुरुष बदाऊं के रहनेवाले थे परंतु लगभग तीन सौ वर्ष से वे आजमगढ से दक्षिण पश्चिम तमसा कूल पर स्थित कसबा निजामाबाद मे आ बसे हैं। पंडित अयोध्यासिह का जन्म संवत् १९२२ मे हुआ।

पंडित अयोध्यासिह के चचा ब्रह्मासिह एक अच्छे पंडित और सच्चरित्र पुरुष थे। उन्होने इन्हे पाँच वर्ष की अवस्था से घर पर विद्याध्ययन प्रारभ करा दिया और सात वर्ष की अवस्था होने पर निजामाबाद के तहसीली स्कूल मे भरती करा दिया। वहाँ इन्होने सन् १८७९ ई० मे वर्नाक्यूलर मिडिल की परीक्षा पास की और वहाँ से मासिक छात्रवृत्ति पाकर बनारस के क्वीस कालेज मे अँगरेजी पढने लगे परतु स्वास्थ्य बिगड जाने के कारण इन्हे थोडे ही दिनो मे घर चला जाना पडा और फिर अँगरेजी की शिक्षा का अंत ही हो गया।

घर पर रह कर इन्होने चार पाच वर्ष तक उर्दू फारसी और संस्कृत का अभ्यास किया। सत्रह वर्ष की अवस्था मे इनका ब्याह हुआ और इसके दो वर्ष बाद सन् १८८४ ई० मे इन्होने निजामाबाद के तहसीली स्कूल मे अध्यापक पद पर नियत होकर कार्य्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया। इसी समय मे इन्होने कचहरी के काम काज का अभ्यास किया और सन् १८८७ ई० मे नार्मल परीक्षा पास की।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

निजामाबाद मे बाबा सुमेरसिंह नामक सिक्ख संप्रदाय के एक साधु रहते थे। वे एक अच्छे विद्वान् पुरुष और हिंदी भाषा के कवि थे। एक दिन बाबा जी के यहाँ कवि और विद्वान् लोगों की एक सभा हुई। उसमे हमारे चरित-नायक भी पधारे और इन्होने दो एक प्रश्नो का ऐसी उत्तम रीति से उत्तर दिया कि जिससे बाबाजी इन पर बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार बाबाजी के कृपापात्र होने पर इन्हे उनके पुस्तकालय के भाषा-ग्रंथ देखने का अच्छा अवसर हाथ लगा। इसी समय बाबू हरिश्चद्रजी का कवि-वचन-सुधा भी प्रकाशित होने लगा था। अस्तु, बाबा जी के यहाँ के भाषा-साहित्य-सबधी भिन्न भिन्न विषयो के ग्र थ और समाचार-पत्रो मे सामयिक साहित्य के पठन पाठन से आप के हृदय मे भी ग्र थ-रचना का उत्साह और मातृभाषा प्रति अनन्य अनुराग उमड आया।

पंडित अयोध्यासिह जी ने मदरसो के डिप्टी इ स्पेक्टर बाबू श्याममनोहर दास के आज्ञानुसार पहिले पहिल काशी-पत्रिका में प्रकाशित वेनिस का बाँका और रिपुवान विकल का उर्दू से हिंदी मे अनुवाद किया। उक्त पत्रिका के कुछ स्फुट निबधो का भी आप ने हिंदी-अनुवाद किया और उनके सग्रह का "नीति-निबध" नाम रक्खा। तदनतर गुलजार-दविस्ता का भाषानुवाद कर के विनोद-वाटिका नाम रक्खा और गुलिस्तां के आठवे बाब का "नोति उपदेश-कुसुम" नाम से अनुवाद किया।

वेनिस के बाके की पंडित प्रतापनारायण ने अपने पत्र ब्राह्मण मे अच्छी समालोचना की थी। उसे पढ कर मातृभाषा के प्रेमी, आजमगढ़ के कानूनगो बाबू धनपतसिह का ध्यान लेखक की तरफ गया। उन्होने इन्हे कानूनगोई की परीक्षा पास कर लेने की सलाह दी। तदनुसार इन्होने सन् १८८९ ई० मे उक्त परीक्षा पास

बाबू राधाकृष्णदास ।

(३६) बाबू राधाकृष्णदास ।
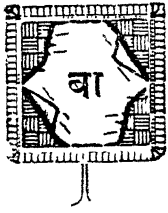
बाबू राधाकृष्णदासजी गोलोकवासी भारतेंदु बाबू हरिश्चद्रजी के फुफेरे भाई थे। बाबू हरिश्चद्रजी के पिता बाबू गोपालचद की दो बहिने थी, बडी यमुना बीबी और छोटी गंगा बीबी। बाबू राधाकृष्णदास गगा बीबी के दूसरे पुत्र थे। इनके पिता का नाम बाबू कल्याणदास था और बड़े भाई का नाम जीवनदास।

बाबू राधाकृष्णदास का जन्म श्रावण सुदी पूर्णिमा सवत् १९२२ मे हुआ था। जब इनकी अवस्था केवल १० महीने की थी तब इनके पिता का परलोकवास हो गया। इसके थोडे ही दिनो पीछे इनके बड़े भाई का भी देहात हो गया। इससे बाबू हरिश्चद्रजी ने अपनी फूफी को अपने घर बुला लिया। उन्हीके निरीक्षण मे इनका लालन पालन हुआ और उन्हीके प्रबध से इनकी शिक्षा आरभ हुई। हिंदी और उर्दू की साधारण शिक्षा घर पर हो जाने के अनतर ये स्कूल मे बैठाए गए। परतु ये बालकपन से ही रोगग्रस्त रहा करते थे इसीसे कभी नियमपूर्वक अध्ययन न कर सके। फिर भी बाबू साहब के सुप्रबंध से इन्होने सत्रह वर्ष की अवस्था तक अँगरेजी मे एँट्रेंस क्लास तक पढ लिया और साथ ही साथ हिंदी, उर्दू, फार्सी और बँगला भाषा मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त करली। पीछे से इन्होने गुजराती भाषा का भी अभ्यास कर लिया था। इनका यह विद्याभ्यास उदरपोषण के लिये नहीं था वरन् मातृ-भाषा हिंदी की सेवा के लिये था। इसलिये इतना ही बहुत था।

बाबू राधाकृष्णदास हिंदी-साहित्याकाश के एक शुभ नक्षत्र थे। इन्होने हिंदी-साहित्य की जैसी कुछ सेवा की किसी साहित्य-सेवी को अविदित नहीं है। इन्होने जितनी पुस्तको की रचना की सब एक से एक उत्तम और प्रभाव-जनक हैं। पुस्तक-रचना के लिये इन्हे बाबू हरिश्चद्रजी ने स्वयं उत्साह दिलाया था वरन् अपने सामने ही इनसे लिखवाना भी आरभ करा दिया था। इनकी सबसे पहिली रचना "दु खिनी बाला" है। इसके बाद "निस्सहाय हिंदू" "महारानी पद्मावती" "प्रताप नाटक" आदि २५ पुस्तकें इन्होने रची। गद्य लेख लिखने के सिवाय आप काव्य मे भी अच्छी पैठ रखते थे और स्वय सरस और भावपूर्ण कविता करते थे। इन्होंने कविता मे कोई पृथक् ग्र थ तो नही रचा परतु स्वरचित गद्य पुस्तको मे यथासमय जो कही कहीं पर पद्य दिए हैं उन्हीसे इनकी काव्य-कुशलता का पूर्ण परिचय मिलता है।

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के नेताओ मे बाबू राधाकृष्णदास मुख्य थे। सन् १८९४ ईसवी मे जब कि इस सभा की शिशु अवस्था थी सबसे पहिले आप ही उसमे सम्मिलित हुए थे और अपने अंतिम समय तक सभा की पूर्ण रूप से सहायता करते रहे। सभा-भवन के बनवाने मे इन्होने बडा उत्साह दिखलाया था और उसके लिये बहुत कुछ उद्योग किया था। सभा के स्थायी कोश के लिये चदा उगाहने को सभा के डेपुटेशन के साथ घर के हजारो काम छोड कर और शरीर दुखी रहने पर भी बाबू राधाकृष्णदास कई जगह गए थे। दफ़्तरों मे नागरी लिपि जारी कराने के लिये जो डेपुटेशन सयुक्त प्रात के छोटे लाट के पास गया था उसमे भी आपने बहुत उद्योग किया था। नागरीप्रचारिणी सभा मे जब कोई हाकिम अफसर आता था तब उसके लिये आप ही कविता मे एड्रेस बना कर देते थे। सभा

पर इनका इतना स्नेह था कि मरते समय भी ये उसे नहीं भूले। अपनी लिखी हुई कुल पुस्तकों का स्वत्व सभा के नाम वसीयत कर गए हैं।

बाबू राधाकृष्णदास आजीविका के लिये अपने एक मित्र के साझे मे ठीकेदारी का काम करते थे। हाल मे जो कई एक अच्छी अच्छी इमारते काशी मे बनी हैं वे आप ही के प्रबध से बनी हैं। आपके नाम से चौखम्भे मे एक दुकान भी चलती है। आप राधा-वल्लभीय सप्रदाय के दृढ वैष्णव थे। परतु वास्तव मे किसी मतमतातर से द्वेष नही रखते थे। आप एक बडे सच्चरित्र, शील स्वभाव और मिलनसार पुरुष थे। क्रोध और कुचाल का तो आप मे लेश मात्र भी न था। सर्वसाधारण मे आपका जैसा आदर था वैसा ही जातिवालो मे भी था। काशी के अग्रवाले मात्र आप की बात मानते थे वरन् यो कहना चाहिए कि एक प्रकार से आप अग्रवाल-समाज के चौधरी थे। इनका देहात ४२ वर्ष की अवस्था मे तारीख़ २ अप्रैल सन् १६०७ को हुआ।

---

(३७) पंडित किशोरीलाल गोस्वागी ।
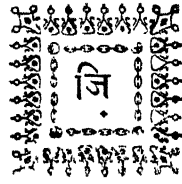
जिला मथुरा, इलाका शेरपुर, परगना छाता के अतर्गत गाँव बसई .खुर्द के माफीदार और वृ दावन केशीघाटस्थ श्री ठाकुर अटलविहारीजी के मदिर के स्वत्वाधिकारी एव सेवाधिकारी तथा श्रीमद्भगवन्निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य्य श्रीस्वयम्भूदेवजी के वशधर राजमान्य श्रीमद्गोस्वामी केदारनाथजी वृ दावन मे एक बडे विद्वान् पुरुष हो गए हैं। जिन्हाने ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भष्य तथा श्रीमद्भागवत पर तिलक निर्माण किए हैं।

उक्त गोस्वामी महोदय के पुत्र गोस्वामी वासुदेवलालजी यद्यपि अपने पिता के समान बहुत बडे विद्वान् नही हुए पर तोभी बहुत कुछ थे, क्योकि इनकी जीवनसबधी घटनाए अद्‌भुत और रहस्यपूर्ण हैं। इनकी प्रथम सहधर्मिणी की अकाल मृत्यु हो जाने पर इनका दूसरा विवाह काशी के श्रीगोस्वामी कृष्णचैतन्यदेवजी की कन्या से हुआ, जिनसे हमारे चरितनायक का जन्म सवत् १९२२ माघकृष्ण अमावास्या को हुआ था। आठ वर्ष की अवस्था होने पर आपका यज्ञोपवीत हुआ और उसी समय विद्यारम्भ कराया गया। इन्होने सस्कृत मे व्याकरण, वेदान्त, न्याय, साख्य, योग और ज्योतिष की प्रथम परीक्षा तक के ग्र थ पढे और साहित्य मे आचार्य्य परीक्षा तक के। इनके पिता कुछ दिनो तक आरे मे रह आए थे, ये भी उन्ही के साथ मे थे। इन्होने पंडित पीताबर मिश्रजी तथा पडित रुद्रदत्तजी से व्याकरण आदि कई ग्र थ पढे थे। और आरे मे आर्य्यपुस्तकालय की स्थापना की और सुप्रसिद्ध पडितवर बालगोविद त्रिपाठीजी से वर्णधर्मोपयोगिनी

पडित किशोरीलाल गोस्वामी ।

सभा स्थापित करवाई। ये इन दोनो के मत्री थे। और वहा पर इन्होंने कुरमी जाति की वर्णव्यवस्था पर सस्कृत मे एक पुस्तक लिखी थी जो 'विज्ञ वृ दावन' नामक पत्र मे छपा करती थी।

इन्होने वर्णधर्मोपयोगिनी सभा द्वारा एक पाठशाला स्थापित करवाई थी और उसी सभा के प्रतिनिधि होकर सवत १६४७ मे भारतधर्ममहामण्डल मे सम्मिलित होने के लिये दिल्ली गए। वहॉ से आकर फिर ये काशी मे बसने लगे। बाबू हरिश्चद्र इनके मातामह के साहित्य के शिष्य थे। इस सबध से उनके यहॉ इनकी प्राय अधिक बैठक रहने लगी और उन्ही के सत्सग से हिदी भाषा की तरफ़ रुचि हुई। इसलिये मातामह गोस्वामी कृष्णचैतन्यदेवजी से भाषासाहित्य तथा पिगल के ग्र थ पढ कर फिर भारतेदु बाबू हरिश्चद्र तथा राजा शिवप्रसादजी की प्रेरणा से गोस्वामीजी ने हिदी मे पहिले पहिल "प्रणयिनीपरिणय" नाम का एक उपन्यास लिखा।

इन्होने कविता, सगीत, जीवनचरित, नाटक, रूपक योग, आदि भिन्न भिन्न विषयों पर कोई सौ पुस्तके लिखी हैं। पहिले तो आप स्फुट लेख लिख कर हिदीसमाचारपत्रो की सहायता करते रहे परतु सन् १८६८ ई० से आप निज की एक उपन्यास मासिक पुस्तक प्रकाशित करने लगे। तब से आपका स्फुट लेख लिखना बद हुआ और हिदी-साहित्य के भडार मे आप उपन्यासो की भरमार करने लगे। इन्होने अब तक कोई ६५ उपन्यास लिखे हैं जो नवयुवको को बहुत पसद आते हैं।

इसके पहिले ये समय समय पर कई एक हिदी-समाचारपत्रो के सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। इन्होने एक उपन्यास, एक चम्पू और तीन काव्य ग्रंथ संस्कृत मे भी रचे हैं।

श्रीमती महारानी विक्टोरिया की डायामड जुबिली के समय इन्होने उक्त राजराजेश्वरी का जीवनचरित सस्कृत मे लिख कर वैष्णव-समाज द्वारा विलायत को भेजा था जिस पर इन्हे होम डिपार्टमेट से धन्यवाद का परवाना मिला था। इस समय कई कारणो से आप कुछ दिनों से काशी छोड कर मथुरा मे रहने लगे हैं।

---

(३८) ठाकुर गदाधरसिंह ।

ठाकुर गदाधरसिंह का संबंध चंदेरी कन्नौज राजवंश से है । ये चंदेल क्षत्रिय हैं । जब मुग़लों ने आगरे को राजधानी बनाया तब इनके पूर्व पुरुष कन्नौज छोड़ कर शिवराजपुर आ बसे, शिवराजपुर से यथा समय तीन राजकुमार गंगागंज, सचेंडी और बेनौर आ बसे । सचेंडी कानपुर से १३ मील कालपी की सड़क पर है । यहाँ पर उन लोगो ने एक किला बनवाया जिसके खँडहर अब तक वर्तमान हैं । सचेंडी शतचंडी का अपभ्रंश है । इनके पूर्व पुरुषो ने यहाँ सौ बेर चंडी की आराधना की थी इसी से यह नाम पड़ा । इनके पूर्व पुरुषो का पेशा सिपाहगरी था । ये लोग पहिले सवारी मनसबदार थे । अब अँगरेजी सैनिक सेवा मे ठाकुर साहब तीसरी पीढ़ी मे हैं । इनके पिता का नाम ठाकुर दरियावसिंह सर्दार बहादुर था । ये बंगाल की पाँचवी नेटिव इन्फैंट्री मे सूबेदार थे । सन् १८३४ ईसवी मे ये सेना मे भरती हुए और १८७८ मे पेंशन ली । इस ४४ वर्ष की सेवा मे इन्होने काबुल, कंधार, मुदकी, ग़ज़नी, फ़ीरोजशहर, सुबराँव, सौताल आदि लड़ाइयों मे काम किया । सन् ५७ के बलवे के समय ये घर पर छुट्टी लेकर आए हुए थे । अपनी सर्कार पर आपदा को देख कर घर न रह सके । चट अपनी पल्टन को लौट गए । इस समय इनको बाग़ी होने के अनेक प्रलोभन दिए गए, पर ये अपने स्वामिभक्त पर दृढ रहे । सन् १८६९ ईसवी मे इनकी पल्टन बनारस मे थी । वहीं उस वर्ष के अक्टूबर मास मे ठाकुर गदाधरसिंह का जन्म हुआ । यद्यपि इनके पिता वैष्णव और

कृष्णोपासक थे परतु उस समय स्वामी दयानद सरस्वती की पुस्तकें इनके हाथों लग गई थी और वे उन्हे बडे अनुराग से पढ़ते थे। इसका प्रभाव बालक गदाधरसिंह पर बहुत पडा। इनकी माता भी लिखी पढी थी। बाल्यावस्था मे शिक्षा घर ही पर माता तथा एक मास्टर द्वारा हुई। इन मास्टर साहब को तुलसीकृत रामायण पढने का बडा अनुराग था। बालक गदाधरसिह भी दो घटे इनके साथ रामायण पढते। पिता की इच्छा थी कि हमारा पुत्र सिपाही हो। अतएव १७ वर्ष की अवस्था मे एँट्रेंस तक पढ कर ठाकुर गदाधरसिह अपने पिता की पल्टन मे भरती हो गए। सेवा के पहिले वर्ष (१८८८ ई०) मे ये ब्रह्मा की लड़ाई पर गए। यहाँ इन्होंने सेनासबंधी सब प्रकार का काम किया। यहाँ से लौटने पर य अपनी सेना के दफ़्तर मे काम करने लगे। सन् १८६४ ईसवी मे जब बगाल की पल्टनो मे जातनामा हुआ तब ये सोलहवी राजपूत पल्टन मे बदल गए और वहाँ स्कूलमास्टरी का काम करने लगे। सन् १८६६ ईसवी मे ये सातवी राजपूत पल्टन मे बदले गए।

सन् १६००—०१ मे अपनी पल्टन के साथ चीन की लडाई पर गए जिसका मनोहर वर्णन इन्होने अपनी "चीन मे तेरह मास" नाम की पुस्तक मे किया है। फिर महाराज एडवर्ड के तिलकोत्सव के समय इन्हे इँगलैंड जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस यात्रा का वर्णन इन्होने "हमारी एडवर्ड तिलकयात्रा" नाम की पुस्तक मे किया है। सेनाविभाग मे २० वर्ष सेवा करके इन्होने अनएटाच्डलिस्ट मे तबदीली कराली और अब सयुक्त प्रदेश के डाक विभाग मे काम करते हैं। सेना मे इनका पद सूबेदार का था।

स्वामी दयानंद सरस्वती के ग्रथो को इन्होने खूब पढ़ा है और उनके अनुयायी हैं। इनकी दो बहिने हैं वे भी पढ़ी लिखी

हैं। बडी बहिन ने तो अनेक वर्षों तक "बनिताहितैषी" नाम का मासिक पत्र निकाला था।

ठाकुर गदाधरसिह का तीसरा ग्र थ रूस जापान युद्ध पर है जो दो भागो मे छपा है। इनके ग्र थो मे एक विशेपता है। वे बडे ही मनोरजक और उत्साह-वर्द्धक हैं और जगह जगह पर मीठी चुटकियाँ लेना तो मानो इन्हीं के हिस्से मे है।

आपका स्वभाव बडा ही मिलनसार और नम्र है और देश-सेवा का रग तो मानो नस नस मे रँगा हुआ है।

---

(३६) पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र।

मुरादाबादनिवासी पडित बलदेवप्रसाद मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म पौष शुक्ल ११ सवत् १९२६ (सन् १८६९ ईसवी) मे हुआ था। इनके पिता का नाम सुखनंदन मिश्र था।

पडित बलदेवप्रसाद को आरभ मे देवनागरी की शिक्षा दी गई थी। हिदी पढ कर इन्होने अँगरेजी भाषा का अध्ययन आरभ किया और उसे समाप्त करके इन्होने फारसी और सस्कृत का अभ्यास किया। इसके पश्चात् इन्होने बँगला, महाराष्ट्री और गुजराती आदि देशभापाओ का अभ्यास किया और थोडे ही दिनो मे आपने उन मे अच्छी योग्यता प्राप्त की। आप जिन जिन भाषाओ को जानते थे उनसे हिदी भाषा मे अनुवाद भी अच्छा करते थे और उन्हे बोलते भी सरलतापूर्वक थे। किवदती है कि आपने कनाडी भाषा का भी किचित् अभ्यास किया था।

पंडित बलदेवप्रसाद अखबार पढने के बडे शौकीन थे। आप जिन जिन भाषाओ को जानते थे उन सब के दो चार अखबार मँगाते थे। इसीसे इन्होने १८—२० वर्ष की अवस्था मे अखबार-सम्पादन करने की योग्यता प्राप्त करली थी। इन्होने साहित्यसरोज, सत्यसिधु, भारतवासी, भारतभानु और सोलजर पत्रिका आदि कई अखबारो का सम्पादन किया और उन्हे बडी योग्यता से चलाया। आप तत्रविद्या के बडे प्रेमी थे। इसलिये आपने तत्र-शास्त्र के उद्धार करने की इच्छा से तत्र-प्रभाकर नाम का एक प्रेस खोला था और उससे तत्रसबंधी कई एक ग्रथ भी छाप कर

पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र ।

प्रकाशित किए थे। पर फिर न जाने क्यों आपने वह प्रेस भी बंद कर दिया और तन्त्र-शास्त्र का उद्धार करने से भी हाथ खींच लिया।

पंडित बलदेवप्रसादजी को मिस्मेरिज़म विद्या से बड़ा प्रेम था और मालूम होता है आप उसमे अभ्यस्त भी थे। पहिले पहिल आपने एक मित्र के अनुरोध से जागती ज्योति नामक मिस्मेरिज़म की पहिली पुस्तक रची। इसके बाद आपको पुस्तक-प्रणयन का चस्का पड़ गया और आप एक के बाद एक ग्रंथ लिखते गए। इन्होने सब मिला कर कोई २५ पुस्तके लिखी हैं जिनमे से कुछ महाराष्ट्री, बँगला और गुजराती का अनुवाद हैं, कुछ संस्कृत का अनुवाद हैं और कुछ स्वरचित हैं। आपकी लिखी हुई बहुत सी पुस्तके व्यंकटेश्वर और भारतवासी समाचार-पत्रो के उपहार में वितरण हुई हैं। आपने टाड राजस्थान का भी भाषानुवाद किया था जिसका एक खंड व्यकटेश्वर प्रेस मे छप चुका है और दूसरा छप रहा है।

पंडित बलदेवप्रसाद इतनी जल्दी हिंदी लिखते थे कि कभी कभी शिकस्त: उर्दू लिखने वालों को भी इन्होने हरा दिया। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी इसीसे इन्होंने थोड़ी सी अवस्था में बहुत कुछ लिख पढ़ लिया था। परिश्रमी तो ये इतने थे कि सबेरे से लेकर संध्या तक काम करते रहने पर फिर भी चित्त न भरता तो रात्रि के दो बजे तक लिखा पढ़ा करते थे। यद्यपि यह समय ऐसा नहीं है कि कोई केवल लेखक होकर जीविका निर्वाह कर सके परंतु आप अपनी लेखनी द्वारा ही हजारो रुपये कमाते थे। आपने निज व्यय से जो पुस्तके इकट्ठी की थो उनका एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था। वह पुस्तकालय इस समय आपके भाई पंडित ज्वाला-प्रसादजी की रक्षा में है।

पंडित बलदेवप्रसाद बड़े दयालु और मिलनसार पुरुष थे। आप छोटे छोटे बालकों से बड़ा स्नेह रखते और घंटों उनके साथ खेलते थे। आपका पंडित दीनदयालु शर्म्मा और बाबू बालमुकुंद गुप्त से घनिष्ठ स्नेह था और सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी आपको बहुत मानते थे। खेद है कि आप ३६ वर्ष की अवस्था मे इस संसार से चल बसे। आपका देहांत संवत् १९६१ के श्रावण शुक्ल ७ सोमवार को हुआ था।

पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम ए

(४०) पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० ।

पंडित श्यामविहारी मिश्र का जन्म एक बड़े ही प्राचीन और प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज ब्राह्मण वश मे हुआ है। बहुत दिन हुए विश्वामित्र, कात्यायन और कीलक ऋषियों के वंश मे एक बडे विद्वान् अनंतराम हुए जिन्हें काशी के पंडितों ने "मिश्र" की उपाधि दी। तभी से इस वश के लोग इस उपाधि से भूषित हैं। इनके पीछे मिश्र चितामणि हुए जिन्होने संस्कृत में कई ग्रथ बनाए। एक समय एक राजा ने इन्हें एक लाख रुपया देकर सगर्व यह कहा—"आपको मुझ सा दानी न मिला होगा।" यह वाक्य मिश्रजी को असह्य हुआ। उन्होने अपने पास से एक लाख रुपया और मिला कर दोनो लाख रुपए राजा पर से निछावर करके बाँट दिए और यह कह कर वहाँ से चल दिए—"आपने मुझ सा त्यागी भी न देखा होगा।" इसी दिन से इस वश में दान न लेने की मर्यादा स्थापित होगई। क्रमश' इस वश की देवमणि, सिद्धि और हीरामणि ये तीन शाखाएँ हुईं, जिनमे से पंडित श्यामविहारी मिश्र प्रथम शाखा के अतर्गत हैं। इस शाखा के लोगों ने क्रमश. बहुत कुछ उन्नति की और बडे बड़े मकान बनवाए तथा बादशाही सेवा में वे चकलेदार के उच्चपद तक पहुँचे। हमारे चरितनायक के पूज्य पिता मिश्र बालदत्तजी बड़े ही चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य थे। भाषा-कविता से उन्हे बड़ा शौक़ था। वे कवि भी अच्छे थे। पिता की ऐसी भाषा-रुचि के साथ ही साथ माता का भी विदुषी होना मानो सोने में सुगन्ध का दुर्लभ संयोग हो गया। इन्हें हिदी के बहुत से कवित्त कंठस्थ थे जिनका वे नित्य पाठ करतीं और जिन्हे उनके अबोध बालक

बड़े चाव से सुनते। ठीक कहा है कि बालपने के संस्कारों का आगे चल कर बड़ा प्रभाव पड़ता है। माता पिता दोनों के हिंदी-अनुराग का समुचित प्रभाव बालको पर पडा। मिश्र बालदत्त के चार पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। सबसे बड़े पडित शिवविहारीलाल हैं जिन्होने गत २२ वर्षों से लखनऊ मे वकालत करके बहुत कुछ यश और धन कमाया है। दूसरे पडित गणेशविहारी मिश्र है जो घर की जमीदारी आदि कार्यों की देख भाल करते हैं और इससे जो समय बचता है उसे भाषा-ग्रंथो के पठन-पाठन मे बिताते हैं। तीसरे हमारे चरित-नायक पंडित श्यामविहारी मिश्र हैं और चौथे तथा सबसे छोटे भाई पंडित शुकदेवविहारी मिश्र हैं।

पंडित श्यामविहारी मिश्र का जन्म भाद्र कृष्ण ४ संवत् १९३० (१२ अगस्त १८७३) को इटौंजे (लखनऊ के निकट) मे हुआ। लडकपन मे ये बडे उपद्रवी और चंचल थे। सात वर्ष की अवस्था मे इन्हें पढ़ना आरम्भ कराया गया। पहिले उर्दू की शिक्षा दी गई। हिदी इन्हे कभी नियत रूप से नही पढाई गई। अपने साथियो की देखा देखी तथा वंशपद्धति के अनुसार हिदी इन्होने आप ही सीख ली। इस ओर इनकी विशेष रुचि होने से धीरे धीरे इन्होने इसमें अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली और अब हिंदी के अच्छे कवि तथा लेखक गिने जाते हैं। १५-१६ वर्ष की अवस्था मे ही इन्हे हिंदी-कविता करने की रुचि हो गई थी। बारह वर्ष की अवस्था होने पर इन्होने अँगरेजी पढ़ना आरम्भ किया। पहिले तो कुछ दिनों तक पढने मे अच्छा जी इन्होंने लगाया पर फिर चौसर की लत पड़ जाने से इसमे कुछ बाधा पडने लगी। यह व्यसन बहुत दिनों तक न रहा। जब इससे पढ़ने मे बाधा पडने लगी और सहपाठी आगे बढ निकले तब इन्हें स्वयं ग्लानि आई, जिसका परिणाम यह हुआ कि आगे की

पढ़ाई निर्विघ्न चली। सन् १८६१ ई० में इन्होंने एँट्रेंस की परीक्षा पास की। फिर क्रमश: सन् १८६३ ई० में एफ़० ए० और सन् १८६५ ई० में बी० ए० की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में अवध में इनका नंबर पहिला रहा और अँगरेजी मे "आनर्स" प्राप्त हुए। यह प्रतिष्ठा इसके पहिले कैनिंग कालेज के किसी विद्यार्थी को नहीं प्राप्त हुई थी। इसके लिये इन्हे दो स्वर्णपदक मिले और कालेज के हाल में स्वर्णाक्षरों में इन का नाम लिखा गया जो अब तक वर्तमान है। सन् १८६६ ई० मे इन्होने अँगरेजो मे एम० ए० परीक्षा पास की। इस बेर अपने कालेज मे इनका नंबर पहिला और युनिवर्सिटी मे चौथा रहा। इनके शिक्षक इनसे सदा प्रसन्न रहते थे और इनकी कुशाग्र बुद्धि पर मोहित थे। कई अध्यापको ने बड़े प्रशंसासूचक सर्टिफिकेट इन्हें दिए हैं।

यों विद्याध्ययन समाप्त करके सन् १८६७ ई० में ये डिप्टी-कल-क्टर नियत हुए और सन् १६०६ ई० में डिप्टी सुपरिटेंडेंट आफ़ पुलिस। इस पद पर रहकर ये कई बेर सुपरिटेंडेंट पुलिस का काम योग्यता और सफलतापूर्वक कर चुके हैं। आजकल आप छत्रपुर में दीवान पद पर सुशोभित हैं। सर्कारी सेवा में इनकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा और ख्याति है। अभी थोड़े ही दिन हुए कि इटावे में कुछ दुष्टों ने एक षड्यत्र मे सानकर इन्हें सर्कार का विरोधी सिद्ध करना चाहा था, पर ईश्वर की इच्छा से सारा भंडा फूट गया और इनकी निर्दोषता सिद्ध हो गई।

मिश्रजी का विवाह ११ वर्ष की अवस्था मे हुआ। सन् १८६३ ई० मे इन्हे पहिली संतति एक कन्या हुई पर जन्म के दूसरे दिन उसका शरीर-पात हो गया। इसके अनतर इन्हे कई कन्याएं और पुत्र हुए जिनमे से जेष्ठ पुत्र जिसका जन्म सन् १८६६ में हुआ था, सन् १६०७ ई० मे परलोकगामी हुआ। यह लडका बड़ा होनहार

था और इसकी मृत्यु से मिश्र जी को बड़ा दुःख हुआ। दूसरे पुत्र आदित्यप्रकाश का जन्म मार्च सन् १९०४ ई० में हुआ। यह भी होनहार प्रतीत होता है।

यह लिखा जा चुका है कि पंडित शुकदेवविहारी मिश्र इनके छोटे भाई हैं। इनका जन्म सन् १८७९ ई० मे हुआ, विद्याध्ययन में सम्यक् प्रशसा के साथ अनेक परीक्षाएं पास कर के ये इस समय हरदोई मे मु सिफ हैं। दोनों भाइयो मे इतना अधिक सौहार्द है कि इन्हे एक प्राण दो शरीर कहना अनुचित न होगा। वे प्रायः मिलकर ग्र थ या लेखादि लिखा करते हैं। आज तक भाषा में जितने ग्रंथ या लेख इनके छपे हैं सब पर दोनों भाइयों के नामाकित हैं। इसका कारण यह है कि दोनो भाई मिलकर लिखते हैं और सब चीजों मे दोनों की कृति वर्तमान रहती है। इस अवस्था मे एक की हिंदी-रचना के संबध मे जो कुछ लिखा जाय उसे दोनो के संबध मे समझना चाहिए। इस युगल जोड़ी ने हिंदी मे १३ ग्रन्थ लिखे या संपादित किए हैं। इनमे सब से उपयोगी "संक्षिप्त इतिहास-माला" नाम की एक ग्रंथावली है जो २०, २२ भागों मे समाप्त होगी। इसके कई भाग छप चुके हैं। दूसरा उपयोगी ग्रंथ हिंदी-साहित्य का इतिहास है। यह बहुत बडा ग्रंथ होगा। जिस समय यह प्रकाशित होगा हिंदो-पठित समाज को इनकी विद्या, बुद्धि, गवेषणा और समालोचक शक्ति का पूरा अनुभव हो जायगा। तीसरा उपयोगी ग्रंथ भूषण-ग्रंथावली है जो नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला मे छपा है। चौथा ग्रथ लवकुश-चरित्र है जिसे छपे कई वर्ष हो चुके। हिंदी-नवरत्न नाम का ग्रंथ इनका बहुत ही अच्छा हुआ है, छोटे ग्रंथों मे पुत्रशोक पर जो कविता इन्होने की है वह अत्यंत सुंदर है।

इन दोनों भाइयों ने हिंदी के प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध मासिक

पत्रों के लिये लेख लिखे हैं। इनमे से कई तो विशेष आंदोलन के कारण हुए। सर्कारी काम से जो समय बचता है उसे वे लोग साहित्य-सेवाही मे लगाते हैं। पंडित श्यामविहारी मिश्र ने अँगरेजी मे भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। काशीनागरीप्रचारिणी सभा के दोनों भाई पुराने सभासद् हैं और उसके कार्यों में सदा उत्साह से सहायता करते हैं। जब से इस सभा की प्रबंधकारिणी सभा में प्रांतिक प्रतिनिधियों का चुनाव होने लगा है पंडित श्यामविहारी मिश्र तभी से संयुक्त प्रांत की ओर से उसके सभासद् हैं और उसके कार्यों के करने मे सदा दत्तचित्त रहते हैं। इस समय आप उसके सभापति भी हैं।